क्या हम मुसलमान हैं?

पवित्र सहाबा (र0) के पूर्ण समर्पित जीवन की ईमान को रौशान कर देने वाली झलकियाँ

भाग–1

लेखकः आचार्य मौलाना शम्स नवेद उस्मानी (रह0)

मिनल् मोमिनी–न रिजालुन स–दकू मा आ–हद्दल्लाह–ह अलैहि———

प्रकाशकः

रौशनी पब्लिशिंग हाउस,
बाज़ार नसरुल्लाह ख़ाँ,
रामपुर (उ0 प्र0) 244901

(सर्वाधिकार क्रमबद्धकर्ता/संपादक के लिए सुरक्षित हैं)

नाम किताब : **क्या हम मुसलमान हैं ?**

लेखक : **मौलाना शम्स नवेद उसमानी (रह0)**

क्रमबद्धकर्ता/संपादक : **अल्लामा सै0 अब्दुल्लाह तारिक़**

अनुवादक : **डॉ0 मो0 जावेद अन्जुम**

प्रथम हिन्दी संस्करण : 2018

सहयोग राशि : 80 रूपए

प्रकाशक:

त्ररौशानी पब्लिशिंग हाउस,

बाज़ार नसरुल्लाह ख़ाँ,

रामपुर (उ0 प्र0) 244901

तब और अब

''क्या हम मुसलमान हैं?''.....

सन् 60 की दहाई की बात है, मौलाना शम्स नवेद उस्मानी के जिगर का ख़ून तीन साल तक सियाही में बदल कर इस शीर्षक के तहत काग़ज़ पर बिखरता रहा और उपमहाद्वीप के हज़ारों मुसलमानों के दिलों में तूफ़ान जगाता रहा। काग़ज़ सिमट कर तीन जिल्दों की एक किताब बन गए। उपमहाद्वीप के कितने ही मुसलमानों ने इसे अपनी ज़िन्दगी की किताब का लोकप्रिय पृष्ठ बना लिया। मैं किसी ऐसे व्यक्तित्व से परिचित नहीं हूँ जिसने "क्या हम मुसलमान हैं?" का कोई एक लेख भी अशकों की भेंट दिये बिना पूरा किया हो। अब भी कभी–कभी कोई सम्मानित हस्ती इन विनम्र शब्दों में विचार व्यक्त करने वाली मिल जाती है कि "हम तो मुसलमान ही इसी किताब को पढ़कर हुए थे।" उस वक़्त मुझे मौलाना से अपनी संगत को लेकर अपने आप पर रश्क आता है।

तीस सालों में दरियाओं में कितना पानी बह गया दृ एक नई पीढ़ी जवान हो गई, लेकिन यह सवाल पहले की तरह बाक़ी है दृ क्या हम मुसलमान हैं? मैंने सोचा–मौलाना का नुस्ख़ा इस

नई नस्ल को भी पेश करूँ दृ लेकिन कैसे.....? उसका कवर क्षतिग्रस्त हो चुका था मगर पन्नों में अब भी बिजलियाँ भरी थीं। मौलाना से इजाज़त लेकर मैं ने उस पर नया कवर चढ़ा दिया जिसके चेहरे–मोहरे का विस्तार कुछ इस तरह है :

1ण कठिन शब्दों को जगह–जगह उनके भावार्थ वाले आसान शब्दों में बदल दिया। मौलाना की अदबी भाषा के साथ बेअदबी तो ज़रूर हुई लेकिन वाक्य अपने मौलिक रंग में ज्यों का त्यों रहा।

2ण पिछली किताब में लेखों का क्रम से न होना उसका सौन्दर्य था। समय के साथ पढ़ने वालों के मिज़ाज के मानक बदले, क्रमबद्धता का दौर आया तो मुझे क्रमानुसार व्यवस्थित करना पड़ा। ह0 अबू बकर (र0) के हालात को अलग–अलग मज़मूनों से उठाकर एक ही लेख में इकट्ठा कर दिया और इसी तरह दूसरे ख़ु–ल–फ़ाए राशिदीन और आदरणीय सहाबा (र0) की घटनाएं क्रमबद्ध कीं। पैराग्राफ़ आगे–पीछे भी हुए लेकिन मुझे उम्मीद है कि प्रवाह और प्रभाव को क्षति नहीं पहुंची है।

3ण वक़्त की रफ़्तार कभी धीमी थी, फिर उसमें पंख लग गए.....आज न्युक्लियाई ईंधन के सहारे समय बिजली की रफ़्तार को शरमा रहा है। किताब को संक्षिप्त करने की ज़रूरत महसूस हुई। तीन जिल्दें पढ़ने का अब किसके पास समय है? एक तिहाई भाग को जगह–जगह से छाँट कर एक भाग बना लिया। दो जिल्दें बाक़ी रह गईं।

मौलाना ने अपनी रूह की गहराईयों का दर्द इसमें जैसा समो दिया था वो उसी तरह आज भी इसमें बाक़ी है। मुझे अटूट विश्वास है कि आप अपने दिल में शोले और पलकों पर शबनम की मौजूदगी का अनुभव किये बिना इसे समाप्त नहीं कर सकेंगे।

रब्बुल इ़ज़्ज़त (सम्मानित प्रभु)! इस पवित्र तपिश और पुनीत नमी को शाश्वत कर दीजिए।

सैय्यद अब्दुल्लाह तारिक़
जुलाई 1993

वो सजदा रूहे ज़मीं जिस से कांप जाती थी
उसी को आज तरस्ते हैं मिम्बरो मेहराब

अनुवादक के क़लम से

मेरे परम् मित्र और मौलाना शम्स नवेद उस्मानी (रह0) के आध्यात्मिक वारिस अल्लामा सै0 अब्दुल्लाह तारिक़ और उनके मिशन के कई साथियों की ओर से यह प्रस्ताव आया कि मुझे "क्या हम मुसलमान हैं?" का ऐसा हिन्दी अनुवाद करना है जो उर्दू न जानने या कम जानने वालों के लिए आसान भाषा में उपलब्ध हो सके।

मेरे भी रूहानी गुरू मौलाना की यह किताब न केवल सुसज्जित उर्दू में लिखी गई है बल्कि दिल के क़लम से मानो शब्दों के मोती पिरो दिये हों। सहाबा (र0) का एक–एक वाक़िआ ऐसा लगता है कि हमारी आंखों के सामने घटित हो रहा हो। आँसुओं की भेंट इस किताब का हर पृष्ठ लेता है, यह मुझे मालूम था कृ सो मेरे दिल की भी धुलाई हो गई।

मेरे सामने इस किताब का आसान हिन्दी में इस तरह अनुवाद करना कि मौलिकता, चाशनी और भाषा की रवानी उसी प्रकार बनी रहे जैसी कि उर्दू में है, एक बड़ी चुनौती थी जिसे मैंने स्वीकार किया। विगत अनुभवों के आधार पर यह काम पूरा करने में ज़्यादा कठिनाई नहीं हुई। उर्दू–हिन्दी के शब्दों से खेलने की आदत सी हो गई है, इसका भी फ़ायदा मिला। पाठक उर्दू व हिन्दी के नए शब्दों से भी परिचित हो जाएं––यह भी प्रयास रहा। समय–समय पर तारिक़ साहब से भी परामर्ष करता रहा। शब्द कोष से उत्तर नहीं मिला तो कहीं–कहीं अपनी शब्दावली भी गढ़नी पड़ी।

मैं अपने प्रयास में कहां तक सफल हुआ हूं, इसका आंकलन पढ़ने वाले ही कर सकते हैं। पाठकों से अनुरोध है कि वह मेरे जैविक और आध्यात्मिक माता–पिता के लिए अल्लाह से दुआ करें क्योंकि यह अनुवाद उन्हीं को समर्पित है–– अमीन!

डॉ0 मो0 जावेद 'अन्जुम'

1

ख़ून–ए–दिल व जिगर से है सरमाय–ए–हयात
(जीवन–धन)

कुरैश का पहला दल सरवरे कौनैन (जगत गुरू) स0 के चाचा अबू तालिब पर दबाव डालने में नाकाम रहा तो दूसरा दल आ पहुंचा और यह मांग रख दी कि – "ऐ अबू तालिब! तुम मुहम्मद (स0) को हमारे देवताओं का सम्मान नहीं सिखा सके– इसलिए अब इनको हमारे हवाले कर दो।––"

मुहम्मदे अरबी (स0) से अबू तालिब को उतनी ही मुहब्बत थी जितनी एक होनहार बेटे से हो सकती है। हालात का यह डरावना मगर निर्णायक पहलू देखकर वो बेबसी की वेदना से तड़प उठे। हर तरफ़ अंन्ध्यारा था– निराशा थी– डर और त्रास था। लेकिन ठीक उस वक़्त जब कुछ न कर पाने के एहसास से उनका सर सीने पर ढलक गया, एक नई उम्मीद की किरन उस अन्ध्यारे में कौंदी–उन्होंने दर्द भरी आवाज़ में आँहज़रत (स0) को पुकाराः

"जिगर के टुकड़े! अब दुशमनों को दुशमनी से बाज़ रखना बूढ़े अबू तालिब के बस से बाहर हो चुका है। वे लोग मेरी नहीं सुनते– लेकिन.....ऐ भतीजे क्या यह नहीं हो सकता कि तुम इस काम से बाज़ आ जाओ जिस ने पूरे मक्के को तुम्हारी जान का दुशमन बना दिया है?"

सदाचारी भतीजे (स0) ने चाचा की यह आवाज़ सुनी और उसके चेहरे का रंग बदल गया। क्या सचमुच यह उसी अबू तालिब की आवाज़ थी जिस के सीने में मुहम्मदे अरबी (स0) के लिये बाप का दिल धड़क रहा था और माँ की ममता जिसकी आँखों में मुहब्बत का नूर बनकर दमकती थी?

हाँ! यह उसी अबू तालिब की आवाज़ थी.....नहीं। यह दुनिया का आख़री सहारा टूटने की आवाज़ थी। यह उस हक़ीक़त का उद्घोष था कि सच्चाई की राह में दुनिया बहुत दूर तक साथ नहीं दे सकती और आख़िरकार खुदा का नाम लेकर चलने वाले के साथ खुदा के सिवा कोई नहीं रह जाता। एक घड़ी के लिए आप (स0) के दिल पर वह सब कुछ बीत गई जो इतने होश उड़ाने वाली और जानलेवा घड़ी में एक इन्सानी दिल पर बीत जानी चाहिए–– अबू तालिब यह देखकर दर्द से बेताब हो गए कि उनके शब्दों का जवाब भतीजे की भीगी हुई

आँखें दे रही हैं–– लेकिन इससे पहले कि वो तसल्ली का एक शब्द मुँह से निकालते, इन पवित्र आंसुओं से संकल्प औरं यक़ीन का अथाह नूर फूटने लगा। भावुकता के मुक़ाबले में ईमान और अटल विश्वास का न ख़त्म होने वाला जोश पूरी ताक़त से उभर चुका था। एक बेपनाह आस्था और हैरत (अचरज) की स्थिति में अबू तालिब ने भतीजे की आवाज़ सुनी।

"मैंने जो काम शुरू किया है, वो मेरी अपनी मौत या इस काम के पूरा होने से एक क्षण भी पहले नहीं रोका जा सकता–– चाहे यह लोग मेरे एक हाथ में सूरज और दूसरे में चाँद ही क्यों न रख दें।"

कितनी सच्चाई, कैसी बेताबी और किस तरह का यक़ीन व निश्चय था इन लफ़्ज़ों में––फ़ौलादी इरादे के सांचे में ढले हुए शब्द––अबू तालिब ने खूब जान लिया कि मुहम्मद (स0) के सीने में निःसंदेह ऐसी कोई क़ीमती चीज़ मौजूद है जो उनको अपनी जान से भी ज़्यादा प्रिय है। काश वह यक़ीन कर सकते कि यही मुहम्मद (स0) का ख़ुदा था––! काश उनके लबों पर कलमए हक़ की शहादत बुलन्द हो जाती। लेकिन वह खूनी सम्बन्ध के जोश में जिस बलिदान तक जा सके वे शब्द यह थे।

"नहीं–नहीं! तुम शौक़ से अपना काम किये जाओ बेटा! बूढ़ा अबू तालिब तुम्हारे साथ है। हर हाल में वह तुम्हारा साथ देगा।"

आह! अबू तालिब और उनके बलिदान की यह दर्दनाक कहानी। जिस सच के रास्ते के लिए वह अपनी जान पर खेल रहे थे, उससे वंचित होकर उनको दुनिया से जाना था।

लेकिन खुदा के लिए एक मिनट रुक कर सोचिए कि वह कुफ़्र की हालत में इस्लाम पर जिस तरह प्राण न्यौछावर किये दे रहे थे, क्या हम इस्लाम की हालत में उसका दसवां–बीसवां हिस्सा भी पेश करने का बलबूता रखते हैं? अगर वह काफ़िर थे तो क्या हम मुसलमान हैं?––– हाँ! मुसलमान हैं?–– मगर ऐसे मुसलमान जिनके किरदार इस्लाम के साथ बेरहमी से मज़ाक करने में व्यस्त हैं।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

2

नए और पुराने ताइफ़

फूलों से ज़्यादा कोमल प्रकृति, मगर शैतानियत के घिनावने माहौल के ढाले हुए शरारती इन्सानी बच्चों की भीड़–– शोर मचाती और तालियाँ बजाती हुई––आवारा नौजवानों की मदमस्त टोलियां–– मानवता को हिला देने वाले ठहाके लगाते हुए––बूढ़े चेहरे––लाशों की तरह निर्जीव और गुनाह की तरह तारीक और बेज़मीर।

अपनी घिनावनी तन्ज़ भरी झुर्रियों के बीच सिमटते –फैलते हुए––इस इन्सानी जंगल में जंगली शोर के तूफ़ानी रेलों के साथ ईंटों की अन्धाधुन्ध बौछार–– बेरहमी से पथराव असहनीय पीड़ा के स्वर और जंगली आक्रोश।

यह ताइफ़ की सरज़मीन पर किस हस्ती का जुनूनी स्वागत किया जा रहा था––आह! कौन जाने––क्या आज ताइफ़ के हरे–भरे मैदानों और ख़ुशहाल मुहल्लों की आबादी में कोई कुख्यात डाकू घुस आया था जिसे घेरा जा रहा था, या इस वादी के ताजो तख़्त पर हमला करने वाले किसी सरदार को गिरफ़्तार किया जा रहा था–– या इस बस्ती के सूरमाओं ने किसी ऐसे "भयानक चरित्र" को धर लिया था जिससे उनकी विलासिता ख़तरे में थी?

आह नहीं–– बिल्कुल नहीं।

पत्थरों की जुल्म ढा रही बारिश के निशाने पर कोई लुटेरा नहीं बलिक सत्यनिष्ठा और ईमानदारी का मुल्की हीरो और अन्तर्राष्ट्रीय पहचान था। वह दोस्तों और दुश्मनों दोनों का अमीन– सादिक़ (ईमानदार–सत्यवादी) था। हाँ इस बेरहम अत्यन्त क्रूरता से किये गए पथराव की ज़द पर उस सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सिवा कोई न था जिसके नूरानी चरणों में वहशी सरदारों की महान कुरैशी प्रतिष्ठा सर झुकाकर यह भीख मांग चुकी थी कि वह "एक नए खुदा" का नारा बन्द कर दें तो वह इस क़ाबिल है कि अरब का ताजो तख़्त उसके हवाले कर दिया जाए।

यह वही पवित्र हस्ती थी जिसकी चरित्र निर्माण क्रान्ति के पवित्र सन्देश को खरीदने के लिए अरबी रेगिस्तान की सौन्दर्य से भरपूर बालाओं की बोली लगाई गई तो शैतान की सत्ता ने

यह देखकर अपना मुँह पीट लिया कि इस अजीब इन्सान की रगों में जज़्बात की नशीली सनसनी की जगह मानवता और उसकी मान–मर्यादा का पवित्र लहू खौल उठा और मानवीय गौरव के एक सुन्दरतम जोश के साथ उसके होंठों से यह शब्द निकले थे–"जिस चीज़ को चाँद और सूरज की भेंट भी न ख़रीद सके, यह दुनिया उस चीज़ को दुनिया के सामान से ख़रीदने का सपना देख रही है––आह यह लोग मुझे नहीं पहचानते।"

ज़मीन और आसमान का हर कर्ण गवाही दे रहा था कि यह खुदा के रसूल (स0) की आवाज़ है–– "इन्सानो!" उसने दर्द से भरी आवाज़ में ताइफ़ की नरभक्षी बस्ती को पुकारा। "सुन लो कि खुदा के अन्तिम सन्देश के अलावा मेरा कोई सन्देश नहीं है। यह तुम्हारे उस खुदा का सन्देश है कि धरती और आकाश में कोई उसकी पकड़ से बचकर नहीं निकल सकता। इससे पहले कि मौत इन्सान की पापों में लिप्त लाश को भोग–विलास के सुरक्षित अड्डों से घसीट कर कायनात (ब्रहमाण्ड) के शहनशाह के दरबार में ले जा पटके क्यों न इन्सान नेअ्मत के आभार की अनायास तड़प के साथ खुद ही अपने पैदा करने वाले की तरफ़ दौड़ पड़े।"

हक़ीक़त की कैसी दिल में बैठ जाने वाली आवाज़ थी यह––कैसी हमदर्द पुकार–। मगर गुनाह की मस्ती में डूबकर अंगड़ाईयाँ लेने वाले इन्सानी दरिन्दों ने पागलों की तरह ठहाका लगाया लेकिन वे भी इससे ज़्यादा कुछ न कह सके। "तुम! तुम हो खुदा के रसूल?! –– आ हा हा हा–– क्या खुदा को इस काम के लिए तुम्हारे सिवा कोई और न मिला? हम तो साफ़ देखते हैं कि तुम तो बस हम जैसे एक इन्सान हो। एक इन्सान जो रोटी खाता और पीता है। और बाज़ारों में ख़रीदता–बेचता हुआ देखा जाता है।"

यही थे वह इन्सान कहे जाने वाले लोग जिनकी नज़र में खुदा के रसूल (स0) का केवल एक जुर्म था–– और वह यह कि वो एक "इन्सान क्यों हैं?" आह! ––इन्सान और इन्सानियत व मानव अस्तित्व से इतनी विमुखता! निराश और इतने निराश!–– क्या ताइफ़ की इस विडम्बना से बड़ी कोई विडम्बना संभव है?–– काश हम इसका जवाब नहीं में दे सकते––काश हम मुसलमान 'मुसलमान' होते। आह भूगोल पर बिखरे हुए यह अनगिनत ताइफ़ जहां एक बार फिर खुदा के रसूल (स0) को रसूल (स0) जानने वाले यह कहते सुनाई देते हैं कि रिसालत को मानने के लिए मुहम्मद (स0) के मानव होने को नकार दो––जहाँ ईमान व अमल की चलती फिरती लाशें अपने खूनी चरित्र से ढली हुई ईंटें और पत्थर के दिल उठाए हुए उस इस्लाम की असली बुनियादों को मिटा देना चाहती है जिसकी तह में ताइफ़ में टपका हुआ लहू–– 'वह पवित्र लहू' समाया हुआ है।

ताइफ़ के शैतानी पथराव में पवित्र ख़ून से रंगे हुए क़दमों की सौगन्ध! वर्तमान युग के नए ताइफ़ और उनके भयानक दृश्य खुदा के रसूल (स0) का दिल ख़ून करने के लिए काफ़ी है।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

3

अर्श तक पहुँचने वाली आवाज़ें

"ऐ अल्लाह! मैं अपने असहाय होने की फ़रियाद तुझी से करता हूँ। ऐ अर–हमर–राहिमीन (सब से ज़्यादा रहम करने वाले)! तू ही कमज़ोरों का पालनहार और तूही मेरा परवरदिगार है। तू मुझे किसके हवाले करता है? क्या किसी अजनबी–बेगाने के जो मुझे देखकर त्योरी चढ़ाए– या किसी दुश्मन के जिसको तू ने मुझ पर क़ाबू दे दिया हो?––खुदाया –– अगर तू मुझ से ख़फ़ा नहीं है तो फिर मुझे किसी की भी परवाह नहीं है। तेरी हिफ़ाज़त मेरे लिए बस है। मैं पनाह चाहता हूँ तेरे चेहरे के उस नूर (दिव्य प्रकाश) की जिससे तमाम अन्धेरे दूर हो जाते हैं। जिस से दोनों जहानों की बिगड़ियाँ बन जाती हैं। मैं पनाह चाहता हूँ इस बात से कि मुझ पर तेरा प्रकोप हो या तू मुझ से रूठ जाए––जब तक तू राज़ी न हो जाए, तुझे मनाए जाना ज़रूरी है।"

यह कौन कह रहा है? किस से कह रहा है? कहाँ कह रहा है? यह किसके दर पर खुदा के रसूल की दिल हिला देने वाली पुकार है जो आज से लगभग 1500 वर्ष पहले ताइफ़ की वादियों में गूँजी थी और आज भी किताब के पन्नों पर उतरती है तो लेखनी का जिगर काँप जाता है। यह पुकार सुनने और रहम करने वाले खुदा ने जब सुनी होगी तो उसकी रहमत और ग़ैरत (दिव्य मर्यादा) कैसी चरम सीमा पर पहुँची होगी––खुदा गवाह है कि कोई इसकी सटीक कल्पना भी नहीं कर सकता। इतिहास इतना ज़रूर बताता है कि इधर यह फ़रियाद (याचना) आप (स0) के मासूम होंठों से जुदा हुई थी और उधर खुदा का जवाब आ पहुँचा था। वायुमण्डल को चीरते हुए दो महान फ़रिश्ते धरा के फ़र्श पर आ खड़े हुए। इनमें से एक खुद हज़रत जिबरील (अ0) थे और दूसरा वह शक्तिशाली फ़रिश्ता जिसके शानों पर खुदा ने पहाड़ों की व्यवस्था का बोझ रखा है।

अस–सलामु अलैकुम या रसूलुल्लाह (स0)! बड़े अदब के साथ जिबरीले अमीन (अ0) ने कहा था "खुदा ने वह सारी गुफ़्तगू खुद सुनी है जो आप (स0) और ताइफ़ के अभागों के बीच हुई और वह फ़रिश्ता आप (स0) की ख़िदमत में भेजा गया है जिसके ज़िम्में पहाड़ों की व्यवस्था है––– आप जो चाहें हुक्म दें।

बेरहम इन्सानों ने जिस पैग़म्बर (स0) पर पथराव किया था, बेपनाह रहम करने वाले खुदा ने उसके क़दमों पर पहाड़ों को ला डाला था। हुजूर इस बन्दा नवाज़ी पर अभी नेमत के शुक्र ही में डूबे हुए थे कि फ़ौरन दूसरा फ़रिश्ता आगे बढ़ा।

"अस–सलामु अलैकुम या रसूलुल्लाह (स0)! वह प्रार्थी था––"मैं ही वह फ़रिश्ता हूँ जो कायनात के मालिक की ओर से आपके आदेश का पालन करने के लिए नियुक्त हुआ है। अगर अनुमति हो तो ताइफ़ के दोनों ओर के पहाड़ों को एक–दूसरे से इस तरह टकरा दूँ कि इस सरफिरी आबादी की कुचली हुई लाशों पर रोने वाला भी कोई न हो।"

कैसा अद्भुत समय था। ऐ दिल वालो! ज़रा सोचो तो सही। एक तरफ़ वह संगदिल आबादी है जिसने एक करूणा की प्रतिमूर्ति को पत्थरों से मारा है। उसका बेहद पाकीज़ा और निःस्वार्थ पैग़ाम सुनकर पागलों जैसी ख़ुशी से तालियां पीटीं और बग़लें बजाई हैं–फ़िक़रे कसे और पथराव किए हैं। दूसरी ओर पहाड़ों की बाग–डोर खुदा ने अपने प्रिय रसूल (स0) के हाथ में दे दी है और पर्वतों की व्यवस्था के लिए नियुक्त देवकाय फ़रिश्ता इस रक्तपाती नगरी के ज़ालिमों को सुरमा बना डालने के लिए आँख के एक इशारे की प्रतीक्षा में है और इन दोनों हिला देने वाले दृश्यों के बीच खुद वही रहमतुललिल–आलमीन (ब्रहमाण्ड के लिए रहमत) रूकावट है

जिसके घायल पैरों से खून के फ़व्वारे फूट निकले हैं––जूते लहू से भर गए हैं और जिसके मज़लूम क़दम कमज़ोरी से लड़खड़ाने लगे हैं––लेकिन जैसे ही उसको यह महसूस हुआ कि ज़ालिमों के लिए खुदा अज़ाब (प्रकोप) का फ़ैसला करने वाला है, वह अपने हर घाव की कसक को भूल ही गया। इस वक़्त उसको बस एक ही बात याद थी कि मैं हक़ (दिव्य सत्य) फैलाने और इन्सानों को बचाने के लिए आया हूँ। बेरहमों की बस्ती की तरफ़ उसने दुःखी नज़रों से देखा और अपने घायल जिस्म की तरफ़ से आँखें बन्द कर लीं–– फिर (दर्द) से भरा जवाब दिया––

"मैं अल्लाह तआला से उम्मीद रखता हूँ कि अगर यह लोग ईमान न लाए तो इसकी नस्लों में से ऐसे लोग ज़रूर पैदा होंगे जो अल्लाह की परस्तिश करेंगे।"

यह थी हक़ को प्रसारित करने की अथाह पीड़ा जिसकी बरकत से एक पहाड़ी बस्ती अज़ाब की लपेट में आते–आते बच निकली––आज फिर दुनिया अज़ाब के निशाने पर है। काश ख़ातमुन–नबीयीन (स0) की उम्मत इस युग की सच्ची अमीन (अमानत को उठाने वाली) साबित हो। कम से कम कोई एक सीना तो इस कसक से फिर एक बार बहारिस्तान बन जाए।

4

एहसास ही एहसास! दर्द ही दर्द!

जगत व्यवस्था की ज़रा सी हलचल से हुज़ूर (स0) कैसे–कैसे चौंक जाते थे! ––कितना गहरा असर लेते थे––! ज़रा हवा तेज़ होती और आपके दिल की धड़कन तेज़ हो जाती। तनिक घटाएं उमड़ती हुई दिखाई देतीं कि आपके पवित्र और मुस्कान भरे चेहरे का रंग पीला पड़ जाता और आपके लबों पर यह बेताब दुआ थरथराने लगती।

"मेरे अल्लाह मैं तुझ से इसकी भलाई चाहता हूँ और वह भलाई जो इसमें है और वह भलाई जो इसके साथ भेजी गई है––और मेरे अल्लाह मैं इसकी बुराई से तेरी पनाह चाहता हूँ और उस बुराई से जो इसके अन्दर है और उस बुराई से जो इसके साथ भेजी गई हो।"

हुज़ूर (स0) मौसम के इन बदलावों से कैसे परेशान होते थे? उम्मुल मोमिनीन (मोमिनों की माता) ह0 आयशा (र0) का खुदा भला करे कि उन्होंने यह राज़ मालूम करने के लिए एक दिन हुज़ूर (स0) से सवाल कर लिया तो हमें इसके महान कारण का पता चल गया। उनके सवाल के उत्तर में भय और त्रास में डूबी हुई हुज़ूर (स0) की यही आवाज़ सुनाई दी थी––"हे आयशा (र0)! मुझे यह कैसे सन्तुष्टि हो जाए कि इसमें खुदा

का प्रकोप नहीं है?" फिर आप (स0) ने उस अभागी नष्ट होने वाली "आद" क़ौम का ऐतिहासिक प्रसंग दिया था जो बादल और हवाओं को देखकर यह भयानक धोखा खा चुकी थी कि इनमें हमारे लिए हरियाली के अलावा कुछ और नहीं––हालांकि इनमें इस नगरी पर टूट पड़ने के लिए अज़ाब के भीषण धमाके चले आ रहे थे।

दुनिया आज फिर "आद" जाति की मानसिकता पर चल खड़ी हुई है। बादलों की घन–गरज––आँधियों के झक्कड़––तूफानों की हलचल––भूकम्प के झटके अब तो आए दिन की बातें हैं, लेकिन कितने चेहरे इस सबसे अच्छे चेहरे की याद ताज़ा करते हैं जो ब्रह्माण्ड की तनिक सी हलचल पर खुदा के ख़ौफ़ से कुम्हला जाता था––कितने सीनों में खुदा के क़हर (प्रकोप) का वह सन्देह सर उठाता है जो ऐसे अवसरों पर हुज़ूर (स0) की बेचैन दुआओं के एक–एक शब्द से टपका करता था। हम, खुदा न करे इस ज़मीन पर प्रकोप की गोद में दम तोड़ें–– लेकिन एक प्रकोपित क़ौम की मनहूस मानसिकता को अपना लेना, क्या खुद एक निरन्तर अज़ाब से कुछ कम है?–– हाय वो लोग जो खुली हुई आँखों से हक़ीक़त को नहीं समझ सकते, उनका अन्जाम उस वक़्त क्या होगा जब आँखें बन्द हो चुकी होंगी।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

5

रहमतुल–लिल–आ–लमीन
(सभी संसारों के लिए रहमत)

उसी सुबह–शाम की दुनिया में एक ऐसी रात भी तो आई है जो हुज़ूर (स0) ने रो–रो कर गुज़ारी थी। आप (स0) खुदा के सामने उस वक़्त हाथ बाँधे हुए ईश भय से कांपते हुए खड़े थे और रह–रह कर रो पड़ते थे जब दुनिया मीठी नींद के मज़े ले रही थी और आप (स0) की उस रात की यह आवाज़ गवाह है कि आप (स0) अपने लिए नहीं इस दुनिया के ग़म में रो–रो कर जान हलकान कर रहे थे।

"मालिकुल मुल्क! अगर आप इनको अज़ाब में डाल दें तो यह आप ही के दास हैं और अगर इनकी ख़ताएँ माफ़ कर दें तो बेशक आप ज़बरदस्त और हकीम (तत्वदर्शी) हैं।"

पूरी रात इसी आलम में गुज़री।
हाय वो रात!––
और–– हाय वह दर्द भरे आँसू!

काश!–– हम और कुछ नहीं तो उन आँसुओं की ही क़ीमत पहचान सकें। ज़रा उस वक़्त का ध्यान करो जब हश्र के मैदान में एक तरफ़ हम और दूसरी ओर ख़ुदा होगा––अलअम्र यौमःइज़िन लिल्लाह––जब गुनाह व जुर्म से ग्रसित इन्सानियत भयंकर अज़ाब की लपेट में आ रही होगी और हम सब उसके आँखों देखे गवाह होंगे––जहाँ दूसरी तरफ़ अर्शे इलाही के सुखद साए में वे भाग्यशाली होंगे जिनके दिन अल्लाह के रास्ते में और रात सज़दों में बीती होगी और इस तरह उस रात की याद ताज़ा होगी जो हुज़ूर (स0) ने पूरी दुनिया के ग़म में रो–रो कर बिताई थी।

हाँ! अभी हम यह सब कुछ सोच सकते हैं, यह मोहलत एक दिन समाप्त ज़रूर हो जाने वाली है, लेकिन अभी ख़त्म नहीं होनी चाहिए, यह क्षण उसका अन्तिम क्षण ही क्यों न हो। हाँ हम अभी यह सोच सकते हैं कि क्या हम मुसलमान हैं? ख़ुदा का शुक्र है कि कि अभी उसने हमें सोचने–समझने और ख़ुदा की तरफ़ जाने की मोहलत दे रखी है। है कोई जो इस मोहलत से लाभान्वित हो?

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

6

आह! वह दोनों !!

कितनी ख़ौफ़नाक थी वह रात––

हत्या और रक्तपात की अथाह दर्दनाक और बेहद संगठित साज़िश–– कुफ़्र व शिर्क की अन्ध्यारी गुप्त स्थली.....!!! परामर्श गृह से चली और रिसालत (स0) के दर्शन–स्थल की दीवारों को छूने लगी। ज़हरनाक तलवारें मियानों से बाहर निकली जाती थीं। नफ़रत और प्रतिशोध का नापाक खून आग भरी आँखों से बाहर टपका पड़ता था। पत्थरों के पुजारी आज रात तय करके आए थे कि सच्चाई और अमानत की प्रतिमूर्ति को आज विध्वस्त ही करके दम लेंगे।

अब क्या हो सकता था?

रसूल (स0) के लिए सुरक्षित निकल जाने के सभी दरवाज़े एक–एक करके बन्द कर दिये गए थे। चारों तरफ़ से मकान अत्यन्त बेरहम क़ातिलों के घेरे में था जहाँ मौत अपने जबड़े

खोले ज़िन्दगी का रास्ता रोके खड़ी थी। कुफ़्र ने अपनी जानकारी में आज कायनात के सबसे उज्जवल और पवित्र चिराग़ को बुझाने की पूरी व्यवस्था कर ली थी।

लेकिन कहाँ? वो बेख़बरे और नादान यह तो जानते ही न थे कि अभी एक सबसे बड़ा दरवाज़ा खुला हुआ है। ज़िन्दगी के महल का वह मुख्य द्वार जिसकी महराबों पर आदम (अ0) से लेकर मुहम्मद (स0) तक अनगिनत पैग़म्बरों के माथे का नूर और जगमाती हुई आत्माओं की चमक कभी न धुन्धले पड़ने वाले चित्र के रूप में रेखांकित थी। वो दरवाज़ जिसकी ईंट–ईंट पर अनन्त काल की कहानी लिखी थी––

मौत और ज़िन्दगी का अकेला मालिक केवल एक है–– सिर्फ़ वही एक–– वही जिसने नूह (अ0) की किश्ती तूफ़ान से निकाली, जिसने यूनुस को मछली के पेट में भी मरने न दिया–– जिसने मूसा (अ0) के लिए दरिया का सीना चीर दिया और जिसकी कुदरत के घेरे से कायनात का एक कण भी बाहर नहीं।"

बेशक नंगी तलवारें खून के प्यासे तेवर और निष्ठुर दलबन्दी आँखों के लिए रोंगटे खड़े कर देने वाली हो सकती है, मगर उसके दिल में उनकी कोई क़द्र नहीं जिसकी अथाह गहराईयों में यह अक़ीदा जड़ें फैला चुका हो कि नफ़ा व नुक़सान की निर्णायक ताक़त सिर्फ़ और सिर्फ़ एक हस्ती के हाथ में है और वही खुदा है। हाँ, वही मेरा अकेला खुदा है।

खुदा की क़सम! यही था ग़ैब (अदृश्य) के ईमान का वह लौह–द्वार जिसको मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) ने खुदा पर पूर्ण आस्था की मासूम शान से खोला और खुदा का हुक्म पाते ही अभय होकर तलवार की धार पर दुश्मन की आँखों में आँखे

डालते हुए बाहर प्रस्थान किया–– यह अक़ीदा अल्लाह माफ़ करे कोई बेबुनियाद अक़ीदा होता तो प्रतिकूल परिस्थितियों से टकराकर पाश–पाश हो जाता। यह अक़ीदा एक हक़ीक़त था, जिसके आगे सारी दुनिया एक बुरे सपने से ज़्यादा कुछ न थी। सच्चाई पूरी ताक़त से सामने आई तो झूठ और जुल्म की सारी शक्तियाँ उलट पलट कर रह गईं जो लोग माहिर जल्लाद की तरह बिफरे हुए खड़े थे, वह ज़िन्दा लाशों और निर्जीव बुतों की तरह खड़े के खड़े रह गए। वो जिन्हें खुदा नज़र न आता था, खुदा का रसूल (स0) भी उनकी आँखों के सामने होते हुए उनकी नज़रों से ओझल रहा–अकड़े हुए सर बेजान लाशों की तरह कन्धों पर ढलक गए। आँखें भयंकर धुंध से पथराकर रह गईं। तलवारों को उठाने वाले बाजू निशक्त हो गए। कैसी बेबस थीं वह शक्तियाँ जिनके साथ खुदा न था। खुदा का रसूल (स0) कुफ़्र की इस दीनता पर मन्द–मन्द मुस्कुराता हुआ अपनी राह पर आगे बढ़ गया।

कितनी क्रान्तिकारी थी वह भयानक रात!––यही थी वो रात जिसकी महिमा का सबसे बड़ा हिस्सा अबू क़हाफ़ा का बेटा ले गया–– वो बेटा जिसका नाम लेने से पहले मलायका वुज़ू करते हैं। वो बेटा जो कई महीनों से उस शुभ घड़ी के इन्तेज़ार में था, जब वो अपने घर–बार, अपने सगे सम्बन्धी और अपनी पूरी दुनिया को पीछे छोड़कर अपने महबूब मालिक अपने सरदार मुहम्मद (स0) इब्ने अब्दुल्लाह के साथ दर बदर और वतन त्यागने की पथरीली राहों पर चीरे और ज़ख़्म खाता चला जाए। वो बेटा जिसका पूरा अस्तित्व प्रेम और अनुपालन के सांचे में ढलकर एक साक्षात सजदा बन गया था–– जानते हैं आप वह कौन था?–– अबू बकर (र0)–– एक बार फिर कहने दीजिए––कौन था वह?––अबू क़हाफ़ा का बेटा अबू बकर (र0)––जिस पर सत्य, सन्तोष और धीरज, क़यामत (महा प्रलय)

तक नाज़ करते रहेंगे––मुहम्मद (स0) के बाद सबसे बड़ा इन्सान।

हालांकि अभी कुछ समय धैर्य रखिए। अभी तो ख़तरों से भरी रात के दामन में वह कामिल इन्सान अकेला ही चला जा रहा है जिसे मालूम है कि मैं अकेला होकर भी अकेला नहीं हूँ। कायनात का खुदा मेरे साथ है––उसके चेहरे पर उस वक़्त भी ख़ौफ़ की कोई सिलवट न थी जब ज़मीन उसके क़दमों के लिए मौत के ख़तरों से हटकर तलवार की धार बन गई थी। खून का संचार न तेज़ हुआ था, न सुस्त पड़ा था। जिस्म में कोई झुरझुरी तक न आई थी। ईमान व यक़ीन का अमिट नूर उस काली रात में भी उसके चेहरे से फूटा पड़ रहा था। जिसको देखकर पहली नज़र में बड़े–बड़े सूरमा धमक और कौशल से थर थराए बग़ैर नहीं रहते थे मगर दूसरी नज़र में जिसकी मनोरम मुस्कान एक भिखारी को भी इस तरह परिचित कर लेती है जैसे वह अपने बेहतरीन दोस्त की पनाह में आ गया हो।

क़दम–क़दम पर उजड़े हुए घर आन्दोलन और सदमे की ख़ामोश कराह बनकर उसकी सच्चाई के क़दम चूम रहे थे। घर के मालिकों ने आख़रत के दृढ़ निश्चय पर इस रंगीनियों से भरपूर दुनिया का परित्याग कर दिया था जो मानव बस्तियों से घायल करके इसलिए निकाले गए थे कि वह अपने सृष्टा और मालिक की परस्तिश क्यों करना चाहते हैं। पत्थर को पूज–पूज कर इन्सानों पर जुल्म क्यों नहीं ढाते? बच्चों को ज़िन्दा क्यों नहीं गाढ़ते और गुलामों को अपना जैसा मानव क्यों नहीं समझते हैं? यही थे वो लोग जिन्होंने दूसरों को लूटने के बजाए खुदा के नाम पर खुद लुट जाना पसन्द किया। यही थे वो लोग ईमान जिनकी हर सांस में बस गया था। जो स्वादिष्ट खानों और ठण्डे–मीठे पानी की नहरों के ठीक किनारे

भूख और प्यास से जान दे सकते थे मगर अपने ईमान के शीशे में एक बाल भी गवारा करने को तैयार न थे।

इन पीड़ा दायक मकानों के चारों ओर दूर–दूर तक वो घर फैलते चले गये थे जहाँ खुदा की ज़मीन पर बसने वाले अपने खुदा को भूल बैठे थे–– जिनको ज़िन्दगी के जाल में फंसकर खुद अपनी मौत भी याद नहीं आ रही थी, यह थे वो घर जो पीड़ितों के उजड़े हुए घरों से भी ज़्यादा दर्दनाक थे। यहाँ मकान आबाद थे लेकिन बसने वालों के सीने उजड़े पड़े थे। यहाँ से ज़िन्दगी की कोई आवाज़ आ रही थी तो वो उदासीनता में डूबे हुए ख़र्राटों की आवाज़ थी या फिर उन गिने–चुने प्रताड़ित मुसलमानों की कराहें जिनको अत्याचार की लौह ज़ंजीरों में जकड़ कर खुदा की राह में सब कुछ न्यौछावर कर देने से भी वंचित कर दिया था।

मानवता के इन भयावह वीरानों से गुज़रते हुए हुज़ूर (स0) के पवित्र चेहरे पर गहरे दर्द की कसक उजागर थी। यह देखकर आपका दिल खुश हो रहा था कि मुझे खुदा ने जिन इन्सानों को जगाने के लिए भेजा था, उनके घरों से आत्मा और दिल का कैसे अन्ध्यारा उबल रहा है––जैसे आपको यह ख़याल तक न था कि इस वक़्त खून के प्यासों की टोली, खुद मेरा घिराव कर रही है––जैसे केवल आपको यह दुःख था कि मुझ पर जुल्म ढाने वाले खुद अपनी जान के सबसे बड़े दुश्मन हैं।

अचानक आपके उदास चेहरे पर रूहानी ख़ुशी का नूर फैल गया। मौत और आत्महत्या की इस अन्धेरी दुनिया में दूर से ज़िन्दगी की आवाज़ भी आ रही थी। उन वीरान खण्डहरों में सामने ही एक ऐसा मकान भी था जिसके दरो–दीवार पर एक पवित्र आत्मा के चमकते साए मनभावन चाँदनी की तरह फैले हुए थे।

जहाँ खुदा के एक बन्दे को नींदों के नरम गरम बिस्तर से कहीं ज़्यादा प्यारी वो जाएनमाज़ थी जिस पर सजदे में गिरते ही बन्दगी की तपती हुई पेशानी अल्लाह के क़दमों को छू लेती है। यह ह0 अबू बकर (र0) का मकान है। बनी तमीम का वह ख़ुशनसीब निराला सौदागर जिसने खुदा की रज़ा और हक़ीक़त ख़रीदने के लिए अपना सब कुछ ख़िदमत में पेश कर दिया था–यही था वो मकान जिसकी ओर आख़री रसूल (स0) के क़दम उठ रहे थे । यही था वो मोमिन बन्दा जिसके भाग्य में रसूल (स0) की मित्रता लिखी जा चुकी थी।

एक बार फिर इस प्यारे नाम ––स्वाद से भरपूर नाम को दोहराइए अबू क़हाफ़ा का बेटा अबू बकर (र0)–। जब आँहज़रत (स0) ने उस ख़तरनाक रात को ह0 अबू बकर (र0) के घर जाकर यह उजागर किया था कि "आज रात मैं खुदा के हुकम से मक्के से जुदा हो रहा हूँ।" तो आँखें साफ़ देख रही थीं कि हुज़ूर (स0) के घिराव में कुफ़्र–शिर्क की कैसी–कैसी बलाएँ चली आ रही हैं। लेकिन एक पल दुनिया की चिन्ता पर खोए बिना ह0 अबू बकर (र0) ने प्रार्थना की थी––"ऐ खुदा के रसूल (स0)!–– मुझे भी साथ चलने का वरदान दीजिए––''वह उस कांटों भरे मार्ग पर हंसते–खेलते हुए चले जो उनको सारी खुदाई से दूर खुदा की तरफ़ ले जा रहा था––आख़रत (परलोक) का घर बसाने के लिए वो घर–बार छोड़ रहे थे। खुदा के रसूल (स0) के मुक़ाबले में परिवार को अलविदा कह रहे थे। ईमान के लिए दुनिया की दौलत लुटा रहे थे–– सारे संसार से दामन झटक कर अपनी जान हथेली पर रखे हुए वह उस व्यक्ति विशेष (स0) के पीछे हो लिये थे जो पूरी दृढ़ता से विश्वास दिला रहा था कि––"ऐ खुदा के बन्दो! मेरे पीछे–पीछे आओगे तो खुदा से जा मिलोगे।"

"ग़ारे सौर" (सौर नामक गुफ़ा) के मुख पर दोनों अपने–अपने ऊँटों से उतरे। गुफ़ा अपने डरावने अस्तित्व के साथ मुँह खोले हुई थी। लेकिन वो दोनों इस गुफ़ा में दाख़िल होने वाले थे जिनको अटल विश्वास था कि हमारा खुदा हर जगह है और जहाँ खुदा है, वहाँ कोई भय नहीं। खुदा और खुदा के रसूल (स0) पर जान न्यौछावर करने वाला बेताबी के साथ आगे बढ़ा और बेधड़क गुफ़ा में कूद पड़ा। अन्दर से यह आसक्त आवाज़ आ रही थी––"मेरे माता–पिता आप (स0) पर सदक़े! ज़रा ठहरिए–– मैं गुफ़ा को ठीक–ठाक कर लूँ।" अभिलाषा के जोश में उसने जेब और गरीबां की धज्जियाँ कर लीं। इन धज्जियों से गुफ़ा के एक–एक छेद को बन्द किया और जब खूब सन्तुष्ट हो गया कि हुजूर (स0) के पवित्र अस्तित्व को अब किसी नुकसान की आशंका नहीं तो केवल खुदा के दर का भिखारी जिस्म पर घज्जियाँ लगाए हुए नयनों और दिल में खुदा की इस अनमोल अमानत को समाए गुफ़ा में दाख़िल हुआ।"

ज़रा ठहरिए––क्या हम दामन और जेब की इन धज्जियों की क़ीमत का कोई अनुमान लगा सकते हैं जो अक़ीदत और जाँनिसारी की देह ने गुफ़ा के सुराख़ों में इसलिए भर दी थी कि कोई घातक जीव उसकी जान से ज़्यादा प्रिय स्वामी को तकलीफ़ न पहुँचा सके–– क़ीमत!..... सूरज की सारी किरनें मिलकर भी तो केवल एक धागे का मोल नहीं बन सकेंगी। आसमानों के सभी सितारे, सारी आकाश गंगाएं, रौशनियों के सारे स्रोत एक पलड़े में रख दो और फिर ग़ारे सौर वाले अबू बकर (र0) के दामन की एक धज्जी दूसरे पलड़े में रखो––तुम देखोगे कि दूसरा ही पलड़ा झुका हुआ है।

तो यही था वो शख़्स जिसके बीवी–बच्चे एक भयानक इन्तेक़ाम की आग के भड़कते हुए शोलों में घिरे हुए दूर मक्के में पड़े थे–– न केवल परिवार के सदस्य बल्कि उसकी उम्र भर की

पूँजी ज्वालामुखी के दहाने पर ढेर थी लेकिन यही था वो व्यक्ति जिसके दिल में ठीक उस समय भी खुदा और खुदा के रसूल (स0) के सिवा किसी के लिए कोई जगह न थी। जब सारे संसार की क़ीमती चीज़े उसके दिल का दरवाज़ा पीट रही थीं–– जिसकी जांघ को महबूब का तकिया बनने का सौभाग्य मिला था। अल्लाह–अल्लाह वो खुदा की सबसे क़ीमती धरोहर जो आज सारी दुनिया से छीन ली गई थी, वही अबू बकर की झोली में डाल दी गई। ह0 अबू बकर (र0) ने देखा कि उनके घर हुजूर के रूप में खुदा की कुदरत बेपर्दा हो गई है––अनायास उनकी रूह पुकार उठी–– हां मैंने गवाही दी थी कि ऐ मुहम्मद (स0) आप बिना सन्देह खुदा के आख़री रसूल हैं।––और ऐ ग़ारे सौर की दीवारो सुन लो कि एक बार फिर यही गवाही देने के लिए मेरा दिल तड़प कर मेरे होंठों पर आ गया है–– हाँ खुदा की क़सम! मेरे लिए खुदा और रसूल (स0) की पनाह काफ़ी है।

हक़ की गवाही की उधर यह पुकार उठी इधर खुदा की अटल सुन्नत के मुताबिक़ एक ज़बरदस्त बलिदान ने मुंह खोला–– गुफ़ा की छलनी दीवारों में जो एक सुराख़ बचा था उसी के अन्दर से एक काले नाग का फन दिखाई दिया, लेकिन जानलेवा संकट की स्थिति देखकर ह0 अबू बकर (र0) के त्याग की भावना कुछ और जाग उठी–– वो शरीर जो मानसिक थकन से चूर रसूले खुदा (स0) को राहत पहुंचा कर खुशी और मस्ती से सर धुन रहे थे, जिस्म और जान के बलिदान के लिए व्याकुल हो गए। यह बात उनके लिए मौत से ज़्यादा कठोर थी कि रसूले खुदा (स0) की राहत में रुकावट आए। इसलिए ज़रा सी हरकत किए बिना उन्होंने पाँव से भयानक बिल का मुँह बन्द कर दिया जिससे नाग सर निकाल रहा था। ईमान की परीक्षा और कड़ी हो गई। सांप ने ज़हरीले दाँत ह0 अबू बकर (र0) के तलुवे में गाड़ दिए और सारे खून को ज़हर की

कष्टदायी लहरों में बदल दिया। लेकिन प्रेम और कर्तव्य के मोर्चे पर जो क़दम पहाड़ की तरह जम गया था, वह टस से मस कैसे होता?..... ज़हर की सुलगती लहरें पूरे शरीर को कांटों और शोलों पर घसीट रही थीं, लेकिन ईमान की कसौटी फूलों की सेज बन कर रह गई थी।

ईमान की ग़ैरत से होंठ सिल गए थे। एक सिसकी भी तो नहीं निकली। एक झुरझुरी भी तो नहीं आई। केवल एक आँसू टपका––हाय वो क़ीमती आँसू जिसकी तक़दीर में यह सम्मान लिखा था कि वो ख़ुदा के रसूल (स0) के पवित्र मुखमण्डल को चूमे। उस पर फैल जाए। सभी सागर मिलकर भी ज़ोर लगाएं तो ऐसा बहुमूल्य मोती कभी पैदा न कर सकेंगे।

इस अधिकारहीन आँसू के जवाब में ख़ुदा की रहमत को जोश आ गया। हुज़ूर तेज़ी से चौंक कर उठे और अबू बकर (र0) की अश्कों से भरी आँखों से वो आँखें चार हुईं जिनमें मानवता की मिठास और ख़ुदा की रहमत सितारा बन कर जगमगाया करती थी।

क्या बात है––ऐ अबू बकर (र0)?" मानवता की पीड़ा से अत्यन्त बेक़रार आवाज़ हुज़ूर के होंठों पर उदय हुई तो एक घड़ी के लिए अबू बकर (र0) यह भी भूल गए कि वह किस यातना से दोचार हैं।

"कुछ नहीं ऐ ख़ुदा के रसूल!" आस्था और शौक़ से भरपूर और दर्द से काँपती हुई आवाज़ में ह0 अबू बकर (र0) ने जवाब दिया––"मेरे पाँव में सांप ने डंस लिया है।" आवाज़ दर्द से कांप रही थी लेकिन इसमें शिकायत नहीं थी––मायूसी नहीं थी––हुज़ूर (स0) ने फ़ौरन अपनी पवित्र लार इस जगह लगा दी जहां काले नाग ने डस लिया था और तुरन्त ज़हर का

असर जाता रहा। यह उस हस्ती की मुँह से निकली लार का दिव्य चमत्कार था कि जिसके मुँह से वह्य (अवतरित वाणी) के फूल झड़ते और ईश्वरीय सन्देश के प्रकाश पुंज टपकते थे।

शारीरिक परीक्षा के ईमान से भरपूर अन्त पर अभी ह0 अबू बकर (र0) की रूह शुक्र के सजदे में ही पड़ी थी कि गुफ़ा के दहाने पर एक इससे भी कड़ी ईमान की परीक्षा की झलक दिखाई देने लगी। उन्होंने देखा कि हुजूर (स0) के जानी दुश्मन गुफ़ा के किनारे तक आ पहुँचे हैं––सांप के फन मारने के बाद भी जो इन्सान अपनी मौत की आँखों में आँखें डालकर मुस्कुरा सकता है वह खुदा के रसूल (स0) को ख़तरे की ज़द में देखकर इस बेबसी के एहसास से अधमरा हो गया कि इस ख़तरे को मेरी जान की बलि भी नहीं टाल सकती। उन्होंने चिन्ता से भरपूर नज़रें हुजूर (स0) की तरफ़ उठाईं और गुफ़ा के दहाने (प्रवेश द्वार) पर दिखने वाले क़दमों की ओर इशारा करते हुए धीरे से कहा––"अब .....क्या.....होगा.....ऐ खुदा के रसूल (स0)? यह लोग अगर ज़रा झुक कर देखेंगे तो हम साफ़ नज़र आ जाएंगे।"

कितनी हसीन थी वह निडरता जो खुदा के रसूल (स0) के क़दमों पर जान–माल और परिवार को कुर्बान कर देने के स्वाभाविक जज़्बे ने उस इन्सान के चेहरे पर ईमान का नूर बनाकर फैला दी थी और क्या शानदार था वह "डर" जो खुदा के रसूल (स0) की जान को बेहद ख़तरे में देखकर उसके खून के संचार और दिल की धड़कनों को निढाल किए दे रहा था लेकिन ठीक उस वक़्त जब अबू बकर (र0) जैसे मोमिन बन्दे की नज़र असहाय परिचित की तरफ़ गई थी, खुदा के रसूल (स0) केवल खुदा और खुदा की कुदरत की तरफ़ आँखें उठाए हुए था। हुजुर (स0) ने भी इस ख़तरे को देखा और अबू बकर (र0) के शब्द सुने–– हुजूर (स0) भी यह समझ रहे थे कि जो

ख़तरा सर पर आ गया है, वह गुफ़ा में दाख़िल हो जाए तो इस बन्द ग़ार में न मुक़ाबले का अवसर है और न फ़रार की कोई राह–– लेकिन उन्हें अटल विश्वास था कि मैं इस वक़्त भी उस सर्वशक्तिमान की रहमत के साए में हूँ जिसकी मुठ्ठी में पूरी कायनात (बह्माण्ड) एक तुच्छ कण से ज्यादा हक़ीक़त नहीं रखती।

"चिन्ता मत करो!" हुजूर ने बेपनाह सुकून व मज़बूती की शान से धैर्य बंधाया––"फ़िक्र मत करो।––"ख़ुदा हमारे साथ है।" वो होंठ जिनकी लार से काले नाग का प्रचण्ड विष पानी–पानी हो गया था, उन होंठों से यह शब्द निकले थे। यह शब्द हर भय व शंका के एहसास तक विषहर बनकर पहुंचे और फ़ौरन अबू बकर (र0) ने महसूस किया कि गुफ़ा की क्षत–विक्षत दीवारें लोहे व फौलादी क़िले में ढल गईं जहां कोई बड़े से बड़ा ख़तरा पर नहीं मार सकता। इधर उनकी रूह से वही पुकार उठी कि "मेरे लिए ख़ुदा और ख़ुदा के रसूल (स0) की शरण काफ़ी है।" और उधर उन्होंने देखा कि गुफ़ा के खुले हुए मुंह तक आ पहुंचने वाले क़दम पलटे और उनकी चाप रेगिस्तान में धूल की तरह बिखर कर गुम हो ई। यह क़दम जो पैग़म्बर (स0) की तलाश में जंगल–जंगल की ख़ाक छान चुके थे–– जब ख़ुदा ने उन्हें रोका तो एक नज़र की दूरी तय न कर सके। अबू बकर (र0) यह देख रहे थे और ईश मसती में थे–– कि हुजूर (स0) का दिव्य व्यक्तित्व अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ उनकी नज़रों के सामने दर्शन के लिए विराजमान है––वह कामिल इन्सान को उन अथाह बुलन्दियों पर देख रहे थे जहाँ इन्सान और ख़ुदा के बीच से ज़मीन व आसमान की हर चीज़ हट गई थी और पैग़म्बर (स0) की आँखें देख रही थीं कि माध्यमों और संसाधनों के तमाम पर्दे उठा कर ख़ुदा की ज़बरदस्त कुदरत इस गुफ़ा में बेपर्दा हो गई है।

तीन दिन तक सच–मुच खुदा के साए में बिताने के बाद ह0 अबू बकर (र0) और हज़रत मुहम्मद (स0) के साथ सौर गुफ़ा से बाहर निकले तो उन्हें महसूस हुआ कि यह तंग और अन्धेरी गुफ़ा नहीं बल्कि एक पूरी दुनिया थी जहां क़दम–क़दम पर खुदा की कुदरत और इन्सान की बन्दगी खुली आंखों से नज़र आ रही थी। वह गुफ़ा में अनदेखे पर ईमान लेकर गए थे लेकिन बाहर आए तो परोक्ष ईमान सदियों का फ़ासला तीन दिन में तय करके साक्षात् अटल विश्वास और अनुभव में बदल चुका था। जिस इन्सान (स0) को उन्होंने रूह व दिल की गवाही से नबी माना था उस गुफ़ा में उनकी आंख उस नुबूबत को सर से पाँव तक देख रही थी। गुफ़ा से बाहर उन्होंने जिस खुदा का यक़ीन किया था गुफ़ा में वह खुदा स्वयं अपना विश्वास दिलाते हुए अपने असीमित प्रभुत्व के चेहरे से आवरण की पर्तें उठा रहा था। लेकिन शायद इस परीक्षा की भट्टी में तपते हुए भी एक आंच की कसर बाक़ी थी––अभी एक ऐसी घटना होना बाक़ी थी जहां पापी इन्सान की ताक़त और खुदा की ताक़त के बीच गुफ़ा की दीवारें और दुनिया का कोई दृश्य रुकावट भी बीच में न आये।

पृष्ठभूमि में धूल के गुब्बार का बादल उठा और एक विशैली तलवार की बिजली चमक कर सर पर आ गई। कुरैश के एक प्रतिष्ठित योद्धा सुराक़ा बिन जअशन के घोड़ों की टापों से ज़मीन दहलने लगी–– यही था वह बेरहम दुश्मन जिसको सौ ऊँटों का तुच्छ पुरूस्कार एक पैग़म्बर (स0) का पवित्र सर हासिल करने की धुन में पागल किये दे रहा था। ख़तरे की ज़बरदस्त बिजली सर पर टूट पड़ना चाहती थी और पैग़म्बर (स0) की पुनीत एवं प्रिय जान इस बेपनाह ख़तरे की ठीक ज़द में आ चुकी थी। रसूल (स0) की मुहब्बत के मतवाले को एक बार फिर इस बेबसी ने तड़पाया कि मैं खुदा की अज़ीम अमानत को बचाने की कोशिश में बिल्कुल बेबस हुआ जाता हूँ।

"ऐ खुदा के रसूल (स0)!" वह जान की बाज़ी लगाने की अभिलाषा में पुकार उठे––"दुश्मन सर पर आ पहुंचा है।"

लेकिन खुदा के रसूल (स0) को ख़तरा तो क्या ख़तरे का यह एहसास भी गवारा न हुआ–– मन की शान्ति ने सन्तुष्टि और अटल विश्वास का प्रतापवान (जलाली) रूप धारण कर लिया। "ऐ अबू बकर! तू क्या समझ रहा है इन दो को जिन का तीसरा अल्लाह है?"––क़दम–क़दम पर नबी (स0) की तस्दीक़ (पुष्टि) करने वाले ने उसी क्षण नबी (स0) के इशारे की तस्दीक़ की और पूरे सुकून व इत्मेनान की दशा में उनकी मानवीय दृष्टि भौतिक संसाधनों से हटकर खुदा की कुदरत पर केन्द्रित हो गई। उन्होंने देखा कि इधर खुदा के रसूल (स0) ने अपने खुदा के सामने दुआ के लिए हाथ फैलाए और उधर ज़मीन फट गई और सुराक़ा के घोड़े के दोनों अगले पाँव उसके अन्दर धँसते चले गए। मुँह के बल गिरने वाला काफ़िर (सत्य को नाकारने वाला) उठा–– उठ कर चला और फिर गिरा––आसमान वाले का इशारा पाते ही ज़मीन ने उस मुजरिम को आगे बढ़ने के लिए राह देने से इन्कार कर दिया था जो बहुत जल्द अपराध के इक़बाल और फिर यथार्थ की स्वीकृति तक पहुंचने वाला था। बार–बार मुँह के बल गिरने वाला सुराक़ा उठा और हाथ जोड़कर जान की अमान मांगी। जो शख़्स दीखने वाली ताक़त के बल पर जान लेने के लिए आया था वह खुदा की ताक़त से सहमा हुआ खुदा के रसूल (स0) से ज़िन्दगी की भीख दामन में लिए वापस जा रहा था। दिल से खुदा को सर्वशक्तिमान मानने वाले मोमिन बन्दे ने आंखों से देखा कि खुदा सर्वशक्तिमान है जिसके एक इशारे पर सब कुछ हो सकता है––वह सब कुछ जिसकी कल्पना भी आदमी पहले से नहीं कर सकता।

इसके बाद यह कारवाँ यसिब्र की ओर रवाना हुआ।

"हाए यह कारवाँ।" ह0 अबू बकर (र0) का गुलाम आमिर बिन फ़हीरा सोच रहा था जिसको ह0 अबू बकर (र0) ने राह दिखाने के लिए अपने ऊँट पर पीछे बैठा लिया था। "हाय यह अद्भुत कारवाँ जिसमें दो इन्सान और एक खुदा है।––दुनिया पूरी ताक़त के साथ इस क़ाफ़िले का पीछा कर रही है, लेकिन इसके नज़दीक पहुंच कर भी इसको छू नहीं पाती।––" और यह कारवाँ खुदा की कुदरत व रहमत (करूणा) की सैकड़ों निशानियों से गुज़रता हुआ––नफ़रत व बदले की शैतानी शक्तियों से बचता हुआ 12 रबीउल– अव्वल सन् 14 नबवी में यसरिब से कुछ फ़ासले पर कुबा के दामन में पहुंचा तो अटल सत्यवादी परवाने रिसालत की शमा पर निसार होने लगे। यह थे वह लोग जो खुदा और उसके रसूल (स0) के क़दमों पर जानें कुर्बान करने की सुलगती हुई तमन्ना पर सर धुन रहे थे। जिन्होंने खुदा के लिए पूरी दुनिया से जंग मोल ली थी। अपनी सारी दुनिया दाँव पर लगा दी थी––लेकिन इन परवानों में सबसे अलग और सबसे ज़्यादा समर्पण एवं बलिदान की तपिश से सुलगता हुआ परवाना वही शख़्स था जो हिजरत (प्रस्थान) की ख़तरों से भरी घाटियों में रिसालत के क़दमों को दिल और जिगर के खून से निखारता हुआ यहां तक पहुंचा था और जिसकी ज़िन्दगी की एक–एक सांस रसूले खुदा (स0) की सुरक्षा में खुद को आगे करने में खर्च होती आई थी––वह यहां भी चादर थामे हुए हुज़ूर (स0) पर साया किए हुए सारी दुनिया से मुँह फ़ेर कर मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) के हसीन चेहरे को प्रेम में स्नेहपूर्वक समर्पण की अकथनीय दशा में तक रहा था। ऐसा लगता था जैसे वह तन्हा उस एक चेहरे को देखकर जी सकता है––जैसे उस चेहरे को देखते हुए यह पूरी दुनिया से बेख़बर हो जाता है––जैसे उसे खुद अपने अस्तित्व की ओर भी एक नज़र उठाने की फ़ुरसत नहीं रहती है।

और आज जब वह चेहरा नज़रों से ओझल है, हमारी नज़रे एक बार फिर दुनिया और दुनिया के सामान की ओर जम कर रह गई हैं। इस्लाम को ख़तरे में घिरा हुआ छोड़कर हम लोग अपने–अपने घरों के सुरक्षित ठिकानों में छिपकर जान बचाने के प्रयास कर रहे हैं। हमें तमाम भौतिक साधनों से उम्मीदें हैं लेकिन उसी अकेली ज़ात से कोई आशा नहीं जो तमाम आशाओं की वास्तविक पनाहस्थली है। कहने को दुआएं उसी से करते हैं लेकिन पूरा आचरण ऐसा ही है जो उसकी रहमत और मदद को नहीं गुस्से और प्रकोप को ही आवाज़ें देता रहता है। खुदा की पनाह! कहां वह इस्लाम जो गोश्त–पोस्त के इन्सानों को एक निरन्तर सजदे में ढाल गया था और कहां यह हमारा इस्लाम जो लगातार बग़ावत और अवज्ञा की कभी न ख़त्म होने वाली कहानी है। चन्द लम्हों के लिए खुदारा आंखें बन्द कीजिए–– और सोचिए––क्या हम मुसलमान हैं.....?

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

7

परमेश्वर को समर्पित एक परवाना

ह0 मुहम्मद(स0) के बचपन के गहरे दोस्त के रूप में सदैव उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाले अबू बकर (र0) ने जैसे ही आँहज़रत (स0) की शुभ ज़बान पर रिसालत का दावा उभरता हुआ सुना वह एक दास के विनम्रता भाव के साथ खुदा के आगे झुके और खुदा के रसूल (स0) के क़दमों के निशान चूमने के लिए बराबर से हटकर उनके पीछे आ गए। बराबर की मित्रता के सालों पुराने दर्जे को रिसालते मुहम्मदी (स0) में फ़ना कर देने का यह चाहत भरा दृश्य देखने की चीज़ था।

शोलों की तरह दहकते हुए और झुलसा देने वाले रेगिस्तानी मार्गों पर दो इन्सान हर जगह साथ देखे गए। इनमें एक वह शख़्स था जिसकी निष्ठा, ईमानदारी और सच्चाई की सौगन्ध चालीस साल से मक्का की गली–गली में खाई जा रही थी तो दूसरा वह ये जिसको पियक्कड़ शराबियों के काफ़िर मक्के ने कभी एक बार भी नशे में नहीं देखा था। मुहम्मद (स0) अपने खुदा के इशारों पर बुतख़ानों, जंगली–असभ्य इन्सानों की ऊंची–नीची दुनिया में जिधर हक़ की आवज़ बुलन्द करते हुए गुज़रते, अबू बकर (र0) की बेचैन आवाज़ पीछे–पीछे बलाएं लेती कांपती और झूमती हुई आती।

मैं गवाही देता हूँ!.....ऐ दुनिया, में गवाही देता हूँ!..... मैं पुष्टि करता हूँ इस आदमी की रगों में कुरैश का बेहतरीन खून है, इसके दिल और रूह में सिवाए नूर के कुछ नहीं–– इसके किरदार में ईमानदारी और सच्चाई के जौहर कूट–कूट कर भरे हैं। मैं एक दो दिन नहीं चालीस साल से इसकी ज़िन्दगी के दिन और रात दोनों देखता आया हूँ और इसके व्यक्तित्व को हर समय अपनी एक नज़र की हद से ऊंचा पाया है। मैं कैसे बताऊँ कि यह कितने अच्छे हैं। कितने सच्चे हैं। मैं इनकी सच्चाई की गवाही देता हूँ। ऐ लोगो ! मैं गवाही देता हूँ।..... ।"

तौहीद और रिसालत की दर्द भरी आवाज़ रसूल (स0) के सीने से उठी और हक़ की गवाही का मस्ताना सिद्दीक़ी नारा दिल और जिगर का खून टपकाता हुआ साथ आता और सारी दुनिया एक पल के लिए सकते में आ जाती––आख़िरकार संगदिलों ने उन दोनों को घूर कर देखा। खुद के पुजारियों के कान खड़े हुए!–– और इन्सान की झूठी खुदाई की नापाक ज़न्जीरों में जकड़े हुए कितने ही गुलामों और दासियों ने आंखों में आंसू भरकर सिसकी ली।

हाए कैसी लुभावनी है यह आवाज़ कि खुदा के सिवा कोई पूज्य नहीं। काश! हम इस आवाज़ पर तन–मन–धन लुटा सकते। काश! खुदा का कोई बन्दा हमें इन्सानी गुलामी से निकाल कर खुदा की बन्दगी में दाख़िल करा सकता।"

यह पुकार खुदा के उसी बन्दे के कान में पड़ी जिसका नाम अबू बकर सिद्दीक़ (र0) था। सुनते ही वह उठ खड़े हुए और आजीवन खून–पसीने की सारी कमाई अन्धाधुन्ध खर्च कर दी–– उन बीस गुलामों पर जिनसे उनका खून का नहीं, हितों का नहीं, शुद्ध ईमान का रिश्ता था। एक भाईचारे का रिश्ता

जिसमें अपने और बेगाने का कोई भेद–भाव नहीं। जहां किसी से कुछ लेने के लिए नहीं दिया जाता बल्कि जहां देने वाला, लेने वाले हर दरवाज़े को यह कहकर अपने हाथों से बन्द कर देता है कि "तुमसे मुझे किसी बदले और प्रतिफल की मांग नहीं। मेरी रोज़ी मेरे रब के हाथ में है। खुदा के न मानने वालों ने भी कभी इन गुलामों को ख़रीदा था ताकि अपनी झूठी खुदाई का खिलौना इनको बनाकर सीना फुला सकें और घमण्ड से सर उठा सकें। अबू बकर (र0) जैसे अल्लाह वाले ने भी उन गुलामों और दासियों को मुँह मांगे दाम देकर ख़रीदा था–– लेकिन सिर्फ़ इसलिए कि खुदा के बन्दों और बन्दियों को खुदा की बन्दगी की आज़ादी दिलाकर ऐकेश्वरवाद की चौखट पर झुका दें और साथ– साथ खुद भी शुक्र के सजदे में गिर जाएं। इन आज़ादी पाने वालों में मर्द भी थे और औरतें भी। हाँ इनमें बिलाले हब्शी (र0) भी थे। आमिर बिन फ़हीरा (र0) थे। इनमें नबीरा (र0) थीं–– नहदिया(र0) और ज़ारिया (र0) थीं।

मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) के दृष्टि उपकार ने अबू बकर (र0) को कहां से कहां पहुंचा दिया? वही अबू बकर (र0) जो बनी तमीम के एक सफल व्यापारी की हैसियत से कभी सोने–चाँदी से दुनिया के साज़ो–सामान का मोल–तोल किया करते थे, आज वही उनकी दौलत थी, जिसके बदले वह दुनिया नहीं जन्नत ख़रीद रहे थे––खुदा की खुशी ख़रीद रहे थे।

सत्य के नाम पर जान न्यौछावर करने वालों का क़ाफिला बढ़ता गया और यथार्थ से चिढ़ने वालों की बदनुमा त्योरियां भी चढ़ती गयीं, सत्य का दावा करने वालों के मुक़ाबले में अब दमन व अत्याचार की कोप प्रवृत्ति पूरी तरह हरकत में आ चुकी थी। अब खुदा का नाम वही ले सकता था, जिसने सर से कफ़न बांध लिया हो और अपनी जान हथेली पर रख ली हो।

तने हुए घूंसे और बिफरी हुई ठोंकरें उभरीं और खुदा का नाम लेने वाले से कहाः "खुदा का नाम प्यारा है या ख़ानदानी प्रतिष्ठा?––याद रखो कि एक अकेले खुदा का नाम लोगे तो इस तमाम वैभव–सम्मान से हाथ धोना होगा जो बनू तमीम के प्रतिष्ठित घराने के एक सम्मानित सदस्य की हैसियत से तुम्हें आज तक हासिल रही है।"

ह0 अबू बकर (र0) न माने –– नामे खुदा पर दुनिया भर की ठोकरें खाना कुबूल किया। आख़रत की सफलता की चाह को ज़मीन के अपमान व रुस्वाई का कोई ख़तरा ज़रा भी तो न सहमा सका। लेकिन जैसे ही कुफ़्र और शिर्क की दुनिया ने उनके ईमान की दौलत की तरफ़ हाथ बढ़ाया और खुदा का नाम लेना दुश्वार कर दिया तो घर और वतन उनको शैतानी क़ैदख़ाने मालूम होने लगे। जहां से दामन बचाकर वह जंगलों को निकल जाते और देश–विदेश की ठोकरें खाने की आरजू करने लगते।

"ऐ खुदा के रसूल (स0)!" उन्होंने जल बिन मछली की तरह अर्ज़ कियाः "देख रहे हैं आप? यह दुनिया अब मेरे होंठों को सी देना चाहती है और मुझे मजबूर कर रही है कि खुदा की बन्दगी में आ जाने के बाद खुदा का नाम लेना छोड़ दूँ। खुदा के लिए इजाज़त दीजिए कि इस वतन और घर–बार को छोड़कर जीने के लिए कोई ऐसा सुकून भरा कोना ढूँढ निकालूं जहां मेरी ज़बान आज़ादी से महान सृष्टा का नाम पुकार सके।"

हुजूर (स0) ने देखा कि अबू बकर (र0) का पूरा जिस्म चीरों और चोटों से पाट दिया गया है। ह0 तलहा बिन अब्दुल्लाह (र0) की रूह में ईमान की जोत जगाने के जुर्म में उनके चचा नौफ़ल बिन खुवैलद (र0) के साथ अबू बकर (र0) को जो दर्दनाक जिस्मानी मार दी है उसकी चोटों के निशान उनके

जिस्म पर जगह–जगह तमतमा रहे हैं। हुजूर (स0) ने देखा कि खुदा की राह में घाव पर घाव खाने वाला वतन छोड़ने का एक और ज़ख़्म खाने के लिए किस दर्जा बेताब और बेचैन है। अल्लाह के रसूल (स0) ने उनको इजाज़त दे दी कि तुम अगर इसी पर अडिग हो कि खुदा के लिए सारी दुनिया छोड़ दो तो खुशी से हब्शे की ओर हिजरत (प्रस्थान) कर सकते हो।

ह0 अबू बकर (र0) ने मक्के के दरो दीवार पर हसरत भरी नज़र डाली। कैसा कठिन समय था कि घर–बार, वतन और अहले वतन छूट रहे थे। सबसे ज़्यादा यह कि खुदा का रसूल (स0) छूट रहा था, लेकिन कैसा हसीन था यह वक़्त! जब खुदा की तरफ़ बढ़ने वाले बन्दे ने महसूस किया कि उसका खुदा खुद भी स्वयं उस असहाय व बेघर बन्दे की तरफ़ बढ़ रहा है। वह एक क़दम बढ़ता है तो खुदा उसकी तरफ़ दस क़दम आगे बढ़ता है और वह तेज़ चल कर जाता है तो खुदा अपनी महान करूणा के साथ बन्दे के स्वागत में दौड़ता हुआ आता है। कोई बताओ आख़िर वह कौन सा सम्मान है जिसकी आरजू और जिसकी कल्पना इस बन्दा परवरी के बाद की जा सके? हज़ारों वतन हज़ारों बार कुर्बान ऐसी बेवतनी पर जिसके क़दमों की धूल में जन्नत गिरी पड़ती हो। हज़ारों दुनियाएँ हज़ारों बार कुर्बान इस बेबसी और विस्थापन पीड़ा पर जहां सारी खुदाई छूट रही हो और क़द्र करने वाला खुदा मिल रहा हो। यही था वह मनोरम यथार्थ जो ह0 अबू बकर सिद्दीक़ (र0) के जिस्म और जान में रचा हुआ था। वह घर के ठण्डे साए और वतन के जीवन्त दृश्यों से कटकर चलते हुए रेत के टीलों के बीच अकेले और तन्हा क़दम–क़दम पर यह महसूस कर रहे थे कि वह हरगिज़ तन्हा नहीं––यहां भी कोई उनके साथ है–– वही कोई जिसके बाद किसी की ज़रूरत नहीं रहती।

आग बरसाते हुए रेगिस्तान में मस्त चले जाते हुए मोमिन को एक काफ़िर ने देखा तो हैरान रह गया। यह क़ारह का धनवान इब्नुद–दग़ना था। उसने सोचा कि बनू– तमीम का यह सम्मानित सौदागर किस सफ़र पर चला जा रहा है जहां न उसके साथ तिजारत का साज़ो–सामान है और न कोई हमसफ़र! लेकिन फिर भी उसकी मुखाकृति से वह खुशी और सन्तुष्टि का नूर दमक रहा है जैसे तमाम जगत की सत्ता उसको मिल गई हो।

ऐ अबू बकर (र0) कहां चले?! हैरत और ताज्जुब से क़ारह के रईस ने सवाल किया––"क़ौम ने मुझे वतन से निकाल दिया है। अब मुझे खुदा की ज़मीन पर एक ऐसा कोना ढूँढ निकालना है जहां मैं आज़ादी से खुदा की परस्तिश कर सकूं।"

ह0 अबू बकर (र0) की आवाज़ में दिल की चोट और ईमान की मनमोहक मिठास थी। ईमान कैसा बेपनाह था। यह मन्ज़र देखकर काफ़िर के ठण्डे –काले सीने में मानवता की पीड़ा जाग उठी। दर्द की एक आह भरी सनसनी उसके पूरे वुजूद में दौड़ गई। जज़्बात से बोझल आवाज़ में एक काफ़िर के मुँह से यह शब्द निकलेः

"नहीं ऐ अबू बकर (र0)! मैं तुम्हें कभी न जाने दूंगा। तुम असहाय लोगों की मदद करते हो––उपेक्षित की पुकार सुनते हो। मेहमानों के लिए पलकें बिछाते हों––नहीं मैं तुम्हें न जाने दूंगा।–– आओ मेरे साथ वापस चलो, मैं शपथ लेता हूं कि तुम मेरी अमान में रहोगे और तुम्हें खुदा की इबादत करने से कोई न रोकेगा।"

वहीं जिसे कुफ़्र व शिर्क ने देश से निकल जाने पर मजबूर किया था। हां उसी को फिर देश में वापस लाने के लिए वही

कुफ़्र और शिर्क उसके पाँव पड़ रहा था––! यह कुफ़्र की हार की पुकार थी, ईमान और सदाचार की जीत का ऐलान था। यह बन्दा नवाज़ खुदा की कुदरत का एक नमूना था।

अबू बकर (र0) फिर एक नई खुद्दारी की शान के साथ इस तरह वापस आए कि क़ारह का धनी सरदार इब्नुद–दग़ना एक हरकारे की तरह कुरैशी सरदारों में घूम–फिरकर यह ऐलान कर रहा था।

"मैं अपनी अमान (संरक्षण) में अबू बकर सालेह (र0) को वापस लाया हूँ। ऐ लोगो तुम्हें ग़ैरत आना चाहिए कि तुम मक्के को एक भलेमानस से ख़ाली कर देना चाहते हो जो ग़म के मारों की हमदर्दी करता और दुखियारों की पीड़ा में जान–माल से हिस्सा लेता है।"

कुछ दिन यह लोग इस उम्मीद के साथ हालात को परखते रहे कि एक बार मुल्क–बदर होने जाने वाला दूसरी बार जिला–वतन होने के डर से अपने आचार–व्यवहार में कोई सावधानी––कोई परिवर्तन पसन्द करता है कि नहीं? उन्होंने देखा कि अबू बकर (र0) की दर्दनाक आवाज़े हर रात उनकी घरेलू मस्जिद से पूरी ताक़त के साथ बुलन्द हो रही हैं, तो खुदा को भूलकर मीठी नींद सोने वाले काफ़िरों के दिल हिल रहे हैं। जो आवाज़ कभी घर के बाहर मक्का वालों को ढूँढती पुकारती फिरती थी, अब वही आवाज़ घर के अन्दर यूँ बुलन्द होती है कि दुनिया उसकी तरफ़ खिंची चली आती है। कुरैशी सरदारों का दल इब्नुद–दग़ना से मिला और ऐलान कर दिया कि अब अबू बकर (र0) को घर के अन्दर रहते हुए इकलौते खुदा का नाम बुलन्द करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इब्नुद–दग़ना ने कुरैशी सरदारों के आक्रोशित तेवर देखे तो

हांपता कांपता हुआ ह0 अबू बकर (र0) के पास आया और कहाः

"क्यों अपनी जान के दुश्मन हुए हो?––खुदा का नाम लेकर तुम सारे मक्के को ख़फ़ा किये दे रहे हो। मुझे ख़तरा है कि इस तरह मैं भी तुम्हें पनाह देने के वादे को नहीं निभा सकूंगा।"

यह उद्घोष एक ज़बरदस्त धमकी थी। यह धमकी भूकम्प की धमक थी कि मक्के में सकुशल रहना चाहते हो तो खुदा की खुलेआम परस्तिश से बाज़ आ जाओ। वरना यह तय है कि तुम्हें मसल डाला जाएगा। लेकिन वह मोमिन जो खूब जानता था कि महशर का ज़लज़ला क्या चीज है और दोज़ख़ की आतिशी कल्पना में किस बला की भयावहता है? उसने स्थिर मन से इब्नुद–दग़ना की बातों को सुना––इब्नुद–दग़ना की सोच पर सकता छा गया जब उसने अपने कानों से अबू बकर (र0) की यह आवाज़ सुनी।

"मुझे तुम्हारी पनाह की दरकार नहीं। मेरे लिये खुदा और खुदा के रसूल (स0) की पनाह बिल्कुल काफ़ी है।"

ऐ माबूद! तेरी इस दुनिया में कभी खुदा पर ईमान लाने वाला दुनिया पर बेपरवाही और उपेक्षा से लात मारकर ख़तरों के मंजधार में यह एलान कर सकता था कि उसको किसी की पनाह की ज़रूरत नहीं। उसके लिए तो खुदा और रसूल (स0) की पनाह काफ़ी है।" लेकिन काश! हम सोच सकते कि यह बातें सोचने की नहीं, कर गुज़रने की हैं। खुदा पर भरोसे का लुत्फ़ तभी उठाया जा सकता है जब खुदा के लिए ख़तरे स्वीकार करने का साहस दिखाया जाए। आग उसी वक़्त फूलों की सेज बन सकती है जब कोई इब्राहीम खुदा का नाम लेकर आग में कूद पड़े। लेकिन हम चाहते हैं कि ख़तरा मोल लेने

से पहले खुदा की शरण–स्थली का द्वार हमारे लिए चौपट खोल दिया जाए। आग के शोले पहले फूलों की सेज में ढल जाएँ। फिर हम "इल्लल्लाह" करके उसमें कूद पड़ें। सच्चे मोमिनों ने कभी यूँ नहीं सोचा––और हम हमेशा हर वक़्त कुछ इसी तरह सोच रहे हैं।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

8

खुदा की ओर आकृषित होती ज़िन्दगी

नई सेहत, नई ज़िन्दगी, सारे जग से निराला भाईचारा और ताज़ा दम सदाबहार ईमान के रंगो – नूर से यस्रिब की वादी में मदीना नाम की जो ज़मीन की जन्नत आबाद हो रही थी, अब वहां खुदा के घर का घर तामीर होना था। मस्जिद की इमारत के लिए जो जगह सबसे ज़्यादा उचित नज़र आई, वह कुछ अनाथ बच्चों की सम्पत्ति थी। अनाथों का दिल शौक़ से मचल गया कि यह "खुदाई सम्मान" उनके हिस्से में आ रहा है। उन्होंने कोई क़ीमत लेने से इन्कार कर दिया। लेकिन यतीमों के बेहतरीन संरक्षक और असहायों के सर्वाधिक हमदर्द ह0 मुहम्मद (स0) को भला यह कब गवारा हो सकता था कि मुआवज़ा दिये बग़ैर उन अनाथों को इस सम्पत्ति से वंचित कर दिया जाए।उन्हें तो यह फ़िक्र थी कि इन्सान की झोली में दोनों जहानों की दौलत समेट दें। रिसालत की अदाओं से परिचित ह0 अबू बकर (र0) ने इशारा पाते ही अपनी आजीवन पूंजी हुजूर (स0) के क़दमों पर ला डाली और मदीने में खुदा का घर तामीर हो गया। मक्के में अपना सबसे पहला घर तामीर

कराने का सम्मान खुदा ने अपने ख़लील (अलै0) को बख़्शा था। मदीने में मस्जिदे नबवी के निर्माण का शानदार अवसर आया तो खुदा की चयन–दृष्टि ह0 अबू बकर (र0) पर पड़ी, जिनके बारे में खुदा के रसूल (स0) ने फ़रमाया था कि खुदा के सिवा अगर मैं किसी को अपना दोस्त बनाता तो वह अबू बकर (र0) ही होते। इसी इन्सान के खून–पसीने की कमाई इस क़ाबिल ठहरी कि इस नूरानी इबादतगाह की बुनियादों में सदा–सदा के लिए समा जाए।

अब सत्य और असत्य का रण, तेज़ व प्रचंड तलवार की धार बन चुका था। अब जंग की सुर्ख़ व काली घटाएं हर क्षितिज से मँडराती हुई मदीने की तरफ़ बढ़ी आ रही थीं। अब अल्लाह वालों को ज़ख़्म खाना ही नहीं ज़ालिम के सीने पर चरका लगाना भी ज़रूरी थी। वह मोमिन जो तेरह साल से धैर्य और मौन सन्नाटे की कुर्बानगाह (बलिदान–स्थली) में खड़े हुए थे, अब उनको बन्दगी की ग़ैरत की बेचैन मांग खून के दरियाओं और तलवारों की छाँव में आ जाने का निमन्त्रण दे रही थी, लेकिन सच यह है कि हुजूर (स0) जहां भी तशरीफ़ ले गए, रसूल (स0) का यह परवाना भी खिंचा–खिंचा साथ आया। ख़ौफ़ और ख़तरे के इस पड़ाव पर भी दुनिया ने यही देखा कि सारी दुनिया से दामन झटक कर चल देने वाला निष्काम इन्सान यहां भी ठीक उसी जाँनिसारी की अदा से मुस्तफ़ा (स0) के दामन को बच्चों की तरह चिमटा हुआ है––जैसे उनको ज़िन्दगी का वह एक लम्हा भी सदा की मौत से ज़्यादा भारी था जब उनके और मुहम्मद (स0) के बीच तनिक सा फ़ासला रुकावट बन जाए।

जब बदर की जंग के हिम्मत की परीक्षा लेने वाले मैदान में पहली बार इस हक़ीक़त का ऐतिहासिक फ़ैसला होना था कि अकेला ज़बरदस्त खुदा काफ़ी है या पत्थरों से ढाले हुए सैकड़ों

झूठे खुदा? जब बातिल (असत्य) के पास सिवाय खुदा के सब कुछ था और हक़ (सत्य) के दामन में खुदा की रहमत के सिवा और कुछ न था। जब भूख और ग़रीबी से कुचले हुए मुट्ठी भर इन्सान खुदा पर भरोसा और मुहम्मद (स0) पर विश्वास करके वहां तक खिंच आये थे जहां मौत और ज़िन्दगी की सरहदों पर कुफ़्र और शिर्क की सारी अमानवीयता जबड़े फैलाए खड़ी थी। जहां भोले–भाले इन्सानों को कच्चा चबा जाने के लिए शैतानी शक्तियों का एक जंगल का जंगल दांत पीसता और चिंघाड़ता हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा था। जहां सिर्फ़ ईमान की ताक़त से लौह–शास्त्रों को तोड़ देना और धारदार तलवारों को कुन्द कर देना था। जहां दिलों के तपिश से फौलादी चट्टानें पिघला देनी थीं। जहां ख़ाली हाथों को साबित करना था कि वह साज़ो–समान पर भारी हैं।

जहां इन्सानों को अपनी कमतरी और अल्लाह की बड़ाई का सबूत एक साथ पेश करना था। वहां, जहां बातिल की राक्षसी सफ़ों (पंक्तियों) पर कुफ़्र और उद्दण्डता ने शोर और उपद्रव से आसमान सर पर उठा लिया था, वहां रिसालत के ख़ेमे में बन्दगी की विनम्रता अन्तिम सीमा को छू रही थी। यहां खुदा की बेपरवाह शान (वैभव) से थरथराते हुए इन्सानों और जिन्नों के आक़ा (स्वामी) मुहम्मद (स0) कभी धूल के फ़र्श पर सर रखते थे और कभी एक भिखारी की तरह खुदा के सामने हाथ फैलाकर पूरी विनम्रता से गिड़गिड़ाते और खुदा की हैरत व रहमत को तड़प–तड़प कर पुकारते थे। उस वक़्त भी वह रिसालत का राज़दार, हुज़ूर (स0) के पहलू में खड़ा होकर सत्य की गवाही की हूक से थरथरा रहा था। जब बन्दे और महबूब (पूज्य) के बीच रहस्यमयी वार्तालाप की इस अद्भुत अवस्था में आँहज़रत (स0) की तड़प दुआ के इन शब्दों तक पहुंचीं:

"या अल्लाह! मुझे असहाय न छोड़! मुझ से तूने जो वादा किया है, उसको पूरा फ़रमा। अगर तेरे यह मुट्ठी भर बन्दे आज इस मैदान में काम आ गए तो क्या ऐ खुदा!–– ऐ खुदा! तू यह चाहता है कि ज़मीन पर कभी तेरी परस्तिश न हो.....क्या..... ..."

तो अनायास ह0 अबू बकर (र0) का कलेजा मुँह को आ गया। दिल की बेक़रार धड़कनें होंठों पर तड़प गईं और पूरी मानवता के सत्य की तपिश––सच की गवाही का ताप अपनी आवाज़ में समेटते हुए उन्होंने आंसुओं से भीगी और जोश से कांपती हुई आवाज़ में सरगोशी की–– ''अल्लाह का रसूल (स0) सच्चा है–– सच कहता हूँ अल्लाह का रसूल (स0) बिल्कुल सच्चा है।"

उधर जंग थी कि तेज़ी पकड़ रही थी, इधर दुआएं ? रसूल (स0) की दिल को तड़पाने वाली तपिश थी कि जिस्मो–जान और जगत से आगे निकली जा रही थी। उधर वहशियों की चिंघाड़ से फ़ज़ाओं में दरारें पड़ रही थीं। इधर रूह और दिल की हूक थी कि ज़र्रों से सितारों तक कायनात का दिल हिलाए दे रही थी। ह0 अबू बकर (र0) इन दोनों के बीच थे। उधर कर्तव्य था जो खून के एक–एक क़तरे को गर्माए दे रहा था, इधर रसूल (स0) के दिल की पीड़ा थी जो उनको तड़पाए दे रही थी–– कि हुजूर के क़दमों पर अपना दिल चीरकर–– कलेजा निकाल कर रख दे। हसरत के जोश से उनका अस्तित्व दो हिस्से होना चाहता था कि इधर भी काम कर सके और उधर भी काम आ सके। जंग के मोर्चे की ललकार सुनाई देती तो बिजली की तरह तड़पते–बल खाते हुए निकल जाते। फिर रसूल (स0) का डेरा नज़र आता तो मौत और ज़िन्दगी दोनों को भूले हुए आग और खून के तूफ़ान को चीरते हुए, पारे की तरह कंपकंपाते–तड़पते हुए हुजूर (स0) के पास दौड़कर आते

और फिर एक नज़र हुजूर (स0) को देखकर शहादत की नई धुन में जंग के मोर्चे की तरफ़ छलांग लगाकर मौत की आंखों में आंखें डाल देते, इसी दशा में इन्होंने तलवारों की छाँव में खड़े होकर रिसालत के शिविर की ओर पलट कर देखा तो भाव–विभोर होने से एक बिजली सी गिर गई। एक सनसनी पैदा करने वाले, रूला देने वाले मन्ज़र ने अबू बकर (र0) के पूरे ध्यान को अपने अन्दर सोख लिया। उन्होंने देखा कि हुजूर(स0) अब दुआ में इस तरह गुम हो चुके हैं कि आप (स0) को और किसी भी चीज़ का होश बाक़ी नहीं है। कम्पन और व्याकुलता का आलम यह था कि आप (स0) की पवित्र चादर शानों से खिसकते –खिसकते ज़मीन पर जा गिरी थी और आप (स0) इसी तरह हाथ फैलाए हुए सच्चे माबूद के आगे गिड़गिड़ा रहे थे। पैग़म्बर (स0) की यह मनःस्थिति कितनी दिल को दुखाने वाली और कैसी होश उड़ाने वाली थी कि ह0 अबू बकर (र0) बेतहाशा शिविर की तरफ़ दौड़ रहे थे––अश्कबार, बेक़रार परवाने की तरह। सिर्फ़ इसलिए कि मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) की चादर ज़मीन पर गिर जाना, अबू बकर सिद्दीक़ (र0) के लिए ज़मीन व आसमान के गिर जाने से कहीं ज़्यादा था। वह ममता से बेचैन माँ की तरह आए और उस हसीन चादर को आंसुओं से पुर आंखों से लगाकर फिर उन्हीं कन्धों पर दुरुस्त कर दिया जिन कन्धों पर दुनिया भर के दुःख हरने का बोझ पहाड़ की तरह रखा हुआ था।

जब मुनाफ़िक़ों (पाखंडियों) की उपद्रवी टोली ने अबू बकर (र0) की चहेती बेटी रसूल (स0) की पत्नी और उम्मत की माता ह0 आयशा सिद्दीक़ा (र0) के ख़िलाफ़ घिनावनी मुहिम छेड़ी थी। जब ईमान और यक़ीन से रौशन सीनों में भ्रान्ति का शैतानी ख़ंजर भोंका जा रहा था। जब एक तरफ़ नबी (स0) की रूह को दूसरी तरफ़ ह0 अबू बकर (र0) की शराफ़त को घायल कर देने के लिए वहशियों जैसा वार किया गया था। उस वक़्त

भी ह0 अबू बकर (र0) ने अपने जज़्बात की ओर नहीं, रसूल (स0) के कल्याणकारी आचरण की तरफ ही देखा। उन्होंने देखा कि हुज़ूर (स0) बेहद व्याकुलता के बावजूद किस सब्र और मौन के साथ क़दम उठा रहे हैं तो वह भी सर झुकाकर उसी राह पर हो लिए। एक चीख़ भी न निकली––एक गर्म नज़र भी तो न उठाई। तीव्र व्याकुलता की पीड़ा और फिर पूरा धैर्य और मौन! कुछ क़दम इस कांटों भरी राह पर चले थे कि घायल दिल पर एक और बिजली गिरी। पता चला कि इस रोंगटे खड़े कर देने वलो उपद्रव का शिकार कुछ सादा दिल मुसलमान भी हो गए हैं और उन मुसलमानों में वह मस्तह बिन असासः (र0) भी शामिल हैं जिनके आजीवन भरण पोषण पर ह0 अबू बकर (र0) ने अपनी मामता की छाँव की बेहतरीन गरमजोशियां खर्च की थीं। खुद अपने पाले हुए के हाथों को अपनी इज़्ज़त व आबरू के खून से रंगीन देखकर उन पर जो भी क़यामत गुज़र गई हो कम है–– लेकिन उस वक़्त भी उन्होंने मुँह से कुछ न कहा। दिल थाम कर और कलेजा मसोस कर रह गए। वह उस वक़्त तक कुछ कहने के बजाय केवल सहना चाहते थे––जब तक हक़ीक़त स्वयं खुलकर न आ जाए। वह खूब जानते थे कि यह आरोप एक पाकदामन की प्रतिष्ठा पर घातक हमला है।

वह देख रहे थे कि हुज़ूर (स0) की बेचैनी और उपद्रवी मुनाफ़िकों के षडयंत्रों के बीच ह0 आयशा (र0) के ढांचे लगे जा रहे थे जो आंसुओं से तर–बतर तकिये पर सर डाले हुये कांटों और शोलों की सेज पर तड़प रही थीं लेकिन कोई चीज़ सिद्दीक़ी सब्र का पैमाना न छलका सकी। वह सीने पर सब्र का पत्थर रखे हुए और होंठों पर संयम का ताला चढ़ाए हुए केवल इसलिए ख़ामोश थे कि यह ख़ामोशी रसूल (स0) का आचरण थी––यह अल्लाह को प्रसन्न करने का मनभावन अवसर था। यह अदा उनके जज़्बात पर कितनी ही भारी क्यों

न हो, उनको दिलो जान से ज़्यादा प्यारी थी कि यह उनके मौला को प्रिय है। आख़िर सब्र की जान पिघलाने वाली परिस्थितियां अपने शुभ अन्जाम को पहुंचीं। इन्तेज़ार के पहाड़ से दिन कट ही गए और आसमानी आवाज़ ने एलान किया कि ज़मीन पर यह फ़ितना (उपद्रव) सरासर झूठ और आरोप है। ह0 अबू बकर (र0) उस वक़्त बोले जब खुदा खुद बोल उठा था। शिष्टाचार और शालीनता की हदों में रहते हुए उन्होंने उस वक़्त भी इससे ज़्यादा रोष प्रकट न किया कि–– "खुदा की क़सम! इस षड़यन्त्र के बाद मैं मस्तह बिन असासः (र0) की परवरिश नहीं कर सकता।" यह एक मोमिन बन्दे के शब्द थे जहां सरल और गम्भीर शब्दों की तह में घायल जज़्बात के तूफ़ान दबे हुए थे। लेकिन अभी इस निर्णायक एलान की गूंज भी ख़त्म न होने पाई थी कि खुदा की दूसरी आवाज़ ने ह0 अबू बकर (र0) को खोए हुए जज़्बात से चौंका दिया।

"तुम में से बड़े और धनवान लोग सगे–सम्बन्धी, वंचितों और खुदा की राह में घर–बार छोड़ देने वालों को (मदद) न देने की क़सम न खाएं और चाहिए कि उनके कुसूर माफ़ करें और अनदेखा करें। क्या तुम यह नहीं चाहते कि अल्लाह तुम को बख़्श दे? और अल्लाह सर्वाधिक माफ़ करने वाला और तरस खाने वाला है।"

खुदा की यह आवाज़ सुनते ही ह0 अबु बकर (र0) ने अपनी आवाज़ दबा दी––अपने ज़बरदस्त जज़्बात का गला घोंट दिया। यह शब्द कि––"क्या तुम यह नहीं चाहते कि अल्लाह तुमको क्षमा कर दे?" ह0 अबू बकर (र0) की आत्मा को तड़पा देने वाला सवाल था। ग़ैरत और आत्म–सम्मान की भावुकता, विनम्रता और बन्दगी में ढल गई। दिल और जिगर का गरम खून आंसुओं में ढल गया। खुदा का परिस्तार खुदा के क़दमों पर गिरते हुए गिड़गिड़ा रहा था––"हां मेरे मौला––मैं यह

चाहता हूं––मैं यह चाहता हूँ, तू मुझे बख़्श दे।" सजदे से सर उठाया और एलान किया––"खुदा की क़सम! अब भी हमेशा मस्तह (र0) का भरण पोशण करूंगा––हमेशा–हमेशा।"

ग़ज़वए तबूक (तबूक की जंग) की तैयारियों में जब हर मोमिन माल से और जान से हिस्सा लेने के शौक़ में अपनी बिसात से आगे निकला जा रहा था––जब ह0 उमर (र0) ने आधा घर बार उठाकर राहे–मौला में लुटाते हुए सोचा था कि शायद नेकी की दौड़ में आज मैं सिद्दीक़े अकबर (र0) पर बाज़ी ले जा सकूंगा––उस वक़्त ह0 अबू बकर (र0) एक कोने में गुलाम और असहाय की तरह यूं सिमटे बैठे थे जैसे बहुत कुछ कर गुज़रने की ज़बरदस्त तड़प हो, मगर वास्तव में तड़प का हक़ अदा न हो सका हो। इस आलम में जब हुज़ूर (स0) ने उनसे पूछा कि "आज वह खुदा और रसूल (स0) के लिए क्या लाए हैं?" तो विनम्रता में डूबा हुआ यह उत्तर मिला––"जो कुछ था, वह सब कुछ ले आया हूँ।" यह जवाब और फिर यह विनम्रता का भाव। उपस्थित लोग सन्नाटे में आ गए। खुदा के रसूल (स0) आत्मीयता से पुकार उठे––"और घर वालों के लिए आख़िर क्या छोड़कर आए हो?––"खुदा और खुदा का रसूल (स0)!" प्रेम और आस्था में डूबी हुई आवाज़ आई।

हाँ ऐ तक़दीर की गर्दिश! कभी हमारी सबसे क़ीमती दौलत का नाम खुदा और रसूल (स0) था––किसी और का रोना तो क्या, सच यह है कि अब हमें खुद भी यह विश्वास करना कठिन है कि सचमुच हम अब भी ठीक वही हैं जो कभी थे? कभी हमारा यह हाल था कि सब कुछ करने के बाद भी यह लगता था कि जैसे कुछ न हो सका। अब कुछ न कर सकने के बाद भी हम इस तरह सन्तुष्ट हैं कि जैसे बन्दगी के सारे कर्तव्यों का पालन कर चुके हों। हाँ खुदा का शुक्र है कि हमें अपनी इस दीवानगी का दुःख भरा एहसास है और बस यही भाव है जिसके दम

तक हमारा ईमान ज़िन्दा है, लेकिन यह ईमान की मरती हुई शक्ति जीवन और मृत्यु का पुलसिरात तय करने के लिये काफ़ी है?––क्या यह चिन्ता हमें सताती है कि––क्या हम मुसलमान हैं?

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

9

इस्लाम दिल से नहीं निकल सकता !

वह भी कैसा प्राणों को आनंदित करने वाला समय रहा होगा जब हुज़ूर (स0) की दर्द भरी दुआ की प्रतिध्वनि बने हुऐ ह0 उमर इब्ने ख़त्ताब (र0) कुफ़्र की अंधेरी वादी से इस्लाम के नूरानी शहर की ओर आगे बढ़ रहे थे––मगर खुद उन्हें भी इसकी ख़बर न थी कि आज दारे अरक़म की दीवारें उनके तौहीद के नारे से गूँज उठने के लिए कैसी व्याकुल और प्रतीक्षारत हैं। उन्हें क्या अन्दाज़ा हो सकता था कि पैग़म्बरे–इस्लाम के ख़िलाफ़ जो तलवार उन्होंने बेहद भयानक इरादे से नियाम से बाहर की है, वह खुद उनके अपने कुफ़्र पर बिजली बनकर गिर जाने वाली है।––वह न जानते थे कि उनके ईमान वाले बहनोई और बहन के चेहरे जब उमर के अमानवीय थप्पड़ों से रक्तरंजित हो जायेंगे तो उनके इस मुक़द्दस खून की चन्द छींटें उनके दिल की एक–एक धड़कन पर अज़ीम एलान चस्पा कर देंगी––

"अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं और मुहम्मद (स0) उसके रसूल हैं।"
हुज़ूर (स0) ने अपने खुदा से इनकार की एकजुटता तोड़ देने के लिए यह दुआ मांगी थी कि––"ऐ सर्वसत्ता सम्पन्न प्रभु! अबू जेहल बिन हिशाम और उमर इब्ने ख़त्ताब में से किसी एक को हमें दे दें।

आज उमर अगरचे इस इरादे से उधर आ निकले थे कि फुरसत के पलों में कुछ देर हक़ के इस पैग़ाम के साथ छेड़–छाड़ का लुत्फ़ उठाया जाए––मगर उनकी रगों में दौड़ते हुए खून को––उनके पहाड़ जैसे इरादे को ––उनके ज़मीर की तह में भड़कने वाली हक़ीक़त की तलाश को क़दम–कदम पर

——बार–बार "हक़" पुकारता आ रहा था और उमर——और उमर उस पुकार को सुनते हुए ——अपनी विशिष्ट लौह पुरूष की छवि को क़ायम रखते हुए अन्दर ही अन्दर——धीरे–धीरे नितान्त अन्जाने में कुफ़्र की ओर अपनी पीठ और इस्लाम की रफ़ अपना रुख़ बदलते जा रहे थे——अनदेखे खुदा, इकलौते खुदा के आगे हाथ बांधे खड़े हुए रसूल (स0) के पाक लबों से जो जीवनदायी और आनन्द से भरी आवाज़ आ रही थी, उसने तो मानो आज उमर (र0) के पूरे अस्तित्व को सकते में डाल दिया था। उमर (र0) खड़े के खड़े रह गए।——उस वक़्त वह सूरए हाक़्क़ः की महान आयतों को मुहम्मद (स0) की आवाज़ में सुन रहे थे——जिनमें कभी ज़मीन की दो बर्बाद क़ौमों आद और समूद के खंडहर उभरते थे और कभी क़यामत के भूकम्प की गरज साफ़ सुनाई देती थी——कभी यह दृश्य आंखों के सामने लाया जा रहा था कि क़बरों के दहानों से मुर्दों के दल के दल उमड़ते हुए हश्र के मैदान के असीमित विस्तार में फैलते जा रहे हैं——यह कारवां आगे बढ़ रहा है और उस तराजू के पास जमा हो रहा है जहां नेकी और बदी के दो पलड़ों में पूरी–पूरी ज़िन्दगी को तोल–तोल कर यह बताया जाएगा कि कौन खुदा की जन्नत का पात्र ठहरा और क़ौन नरक का तुच्छ ईंधन बनेगा? और फिर किस तरह सत्तर–सत्तर गज़ की भारी भरकम ज़न्जीरों की एक ज़बरदस्त झनकार होगी और यह भयानक दृश्य सामने होगा कि खुदा की कर्तव्यपरायण पुलिस ने मुजरिमों के शिकन्जे कस डाले और अब उन्हें जन्नत वासियों के हर्ष से भरी मुस्कान से बहुत दूर उस दोज़ख़ की ओर हंका दिया गया जो दूर ही से तेवरी चढ़ाए चीख़ता दहाड़ता सुनाई दे रहा है।

उमर इब्ने ख़त्ताब ने यह आवाज़े हक़ सुनी और उन्हे साफ़ लगा कि यह आवाज़ अब बाहर नहीं खुद उनके अपने सीने के अन्दर हलचल डाल रही है—— मगर अभी तक दिल जागा न था——सब कुछ समझ कर भी कुछ समझ में न आ सका।

"कैसी अद्भुत आवाज़!! दिल ही दिल में वह बड़बड़ाए और फिर––खुद ही अधिकतम यह समझ सके–– "निःसन्देह यह शख़्स तो कोई बड़ा ही महान शायर है.....!" लेकिन यह आवाज़ भी उनके सीने से ही उठी ही थी कि वह यह महसूस करके सकते में आ गए कि कुरआन ने उनकी यह गुप्त आवाज़ भी सुन ली है और न केवल सुन ली है बल्कि अगली आयतों में इसका दो टूक जवाब भी दिया जा रहा है।

"व–मा हुवा बि क़ौलि शाइरिन"।–– नहीं, यह किसी शायर की बात नहीं––मगर तुम बहुत कम ईमान लाते हो।"

"अरे!" उमर (र0) के दिल की सरगोशी अनायास अक्षर रूपी आश्चर्य में ढल गई––"कितना बड़ा काहन (ज्योतिषी) है।"

"वला बिक़ौलि काहिनिन"––कुरआन ने तुरन्त इस विचार को भी नकारते हुए कहा––"यह किसी ज्योतिषी का भी कथन नहीं है––तुम तो बहुत ही कम समझते हो।"

उमर इब्ने ख़त्ताब (र0) की वैचारिक दुनिया में यकायक एक सन्नाटा छा गया और इस ज़बरदस्त सन्नाटे में कुरआन की आवाज़ आए चली जा रही थी।

"यह (कलाम) उतारा हुआ है आलमों के रब का और अगर यह (पैग़म्बर) लाता हम पर कोई बात तो हम पकड़ लेते इसका दाहिना हाथ, फिर काट डालते इसकी गर्दन–– फिर तुम में कोई ऐसा नहीं जो उस (खुदा) से बचा सके और यह नसीहत है डरने वालों के लिए––और हम जानते हैं कि तुम में से कुछ का तरीक़ा झुटलाना है मगर यह परिपाटी दुःख और हसरत के सिवा कुछ भी देने वाली नहीं।"

उन्होंने यह सब कुछ सुना––रूह यक़ीनन हिल गई थी मगर भावनाओं का यह भूकम्प अभी अवचेतन की तह से उभरकर चेतन की सतह तक न पहुंचा था। इसलिये सच्चाई के यह हसीन झटके एक के बाद एक लगे जा रहे थे, उधर हक़ था कि अन्दर ही अन्दर उनके दिल के नाजुक तारों को छेड़ चुका था मगर चेतन था कि माहौल के सत्य विरोधी शोर–गुल में पिसता हुआ खुद अपनी आत्मा का संगीत सुन ही नहीं सकता था। एक भारी खींचा–तानी अन्दर और बाहर चल रही थी जिसने एक ज़बरदस्त झुंझलाहट और गुस्से का रूप धारण कर लिया।

आख़िर इस मानसिक दुविधा का दो टूक फ़ैसला करने के लिए उन्होंने अभी तलवार को मियान से बाहर निकाला और इस हस्ती को क़त्ल कर डालने के इरादे से निकल खड़े हुए जिसके लहू की एक बूँद की क़ीमत आकाश के सारे चादँ–सितारे भी नहीं हो सकते थे। यह वह क्षण था जब अन्जाना हक़ (सत्य) और जाना बातिल (असत्य) उनके अन्दर पूरी ताक़त से गुत्थम–गुत्था हो रहे थे। जज़्बात की यह शोर भरी आंधी चली, मक्के के गली–कूँचों में इसने प्रवेश किया––अचानक इस आंधी से एक इन्सान आ टकराया। यह ह0 नईम बिन अब्दुल्लाह (र0) थे। वह उमर के भयावह तेवर देख कर ठिठक गए।

"किधर?––ऐ उमर किधर?" उन्होंने आगे बढ़कर गहरी चिन्ता के साथ पूछा––"मुहम्मद (स0) का फ़ैसला करने चला हूँ।" उमर की सुर्ख़–सुर्ख़ आंखों से शोले निकले और इब्ने अब्दुल्लाह ने उनकी आवाज़ में बादल जैसी कड़क महसूस की।

"पहले अपने घर की ख़बर लो।" इब्ने अब्दुल्लाह (र0) ने पूरे साहस के साथ इस शख़्स की आंखों में आंखे डाल दीं जिसके

हाथ में नंगी तलवार थी और सर पर खून सवार था। जिस अटल सत्य का फ़ैसला करने के लिए तुम इस तरह घर से निकले हो, वह सत्य खुद तुम्हारे घर में घुसकर तुम्हारे बहन–बहनोई के सीनों में उतर चुका है।"

यह बात सुनते ही उमर इब्ने ख़त्ताब तिलमिला गए––तेज़ी से घूमे और रसूल (स0) के दरबार के बजाय अपने बहन के मकान की तरफ़ तूफ़ानी रफ़्तार से चल पड़े। दरवाज़े पर क़दम रखते ही उन्होंने सुना कि अन्दर कुरआन पढ़ा जा रहा है। यही वह समय था जबकि उनकी बहन और बहनोई ह0 ख़बाब इब्ने अरस (र0) से अल्लाह की किताब की शिक्षा हासिल किया करते थे। आज उमर कुरआन पर कुछ मन्थन करने के क़ाबिल न थे––आज तो कुरआन की आवाज़ सुनते ही उनके आक्रोश का लावा खौल उठा था। उन्होंने दरवाज़े को भयानक झटकों से झंझोड़ डाला––दरवाज़ा खुला और वह अन्दर दाख़िल हुए, मगर उन्होंने देखा कि वह किताब छिपा दी गई है और हर तरह के कोप का निशाना बनने के लिए एक मोमिन और मोमिना ने पूरे साहस से सीना खोल दिया है।

"यह कैसी आवाज़ थी?" बहन और बहनोई को आंखों ही आंखों में खा जाने के अन्दाज़ में घूरते हुए उन्होंने पूरी ताक़त से ललकारा। "कैसी आवाज़?" मोमिन और मोमिना दोनों ने बेहद अन्जाना बनकर कहा––वह पूरी तरह सन्तुष्ट थे कि वह अपने खुदा की किताब और अपने गुरू सहाबी–ए–रसूल (स0) को इस भयंकर तूफ़ान से बहुत दूर पहुंचा चुके हैं और अब जो कुछ कष्ट पड़ना है, वह स्वयं उनके जिस्मों को झेलना है–– वह जिस्म जिनका रोम–रोम खुदा के हाथ बिक चुका कृ वह जिस्म जिनकी सबसे बड़ी कामयाबी यह है कि खुद अपने लहू में स्नान करके वह सदा के लिए जीवित और पाक–साफ़ हो जाएं।

"बस करो!" कृ उमर इब्ने ख़त्ताब ज़मीन पर पाँव पटखते हुए गरजे।" मैं खूब समझ चुका हूँ कि तुम दोनों मुरतद (बेदीन) हो गए हो।"

यह कहा और फिर जवाब का इन्तेज़ार करने की भी उनके आक्रोश ने अनुमति नहीं दी, भूखे शेर की तरह वह बहनोई पर झपटे तो बेरहम हाथों का भरपूर वार पड़ते ही वहां चीखो पुकार की जगह तौहीद और रिसालत की गवाही की आवाज़ बुलन्द हुई। फिर फ़ौरन ही एक बिजली सी चमकी और उमर इब्ने ख़त्ताब ने देखा कि मोमिना पत्नी अपने पति को बचाने के लिए ढाल बनकर आगे आ गई है। ठीक उस वक़्त जबकि बलशाली हाथों के लगातार वार एक मर्द मोमिन को निढाल करने के बाद एक मोमिना के मासूम चेहरे पर अपनी ताक़त आज़मा रहे थे कृ बहन के होंठों कृ खून में भीगे होंठों पर ईमानी ग़ैरत की हिला देने वाली गरज उभरी और उमर ने सकते के आलम में यह महसूस किया कि यह आवाज़ अपनी पूरी गरज और धमाके के साथ उनके हाथ–पैरों की तमाम फ़ौलादी शक्तियों को पाश–पाश करती हुई उनके अस्तित्व के अन्दर प्रवेश कर गई है। एक ज़बरदस्त थरथरी पैदा हुई और उनके दिल और रूह की बुनियादों में कम्पन सा आ गया।

"ऐ उमर!" शारीरिक मोर्चे पर निढाल होकर गिरती हुई बहन ने ईमान के रौशन क्षितिज से उभरते हुए कहा––"ऐ उमर!–– जो बन आए कर गुज़रो, लेकिन इस्लाम अब इस दिल से नहीं निकल सकता।"

क्या यह केवल एक आवाज़ थी? यह तो आस्था एवं अटल विश्वास था, एक ज़लज़ला था। यह तो हक़ पर जान न्यौछावर करने का भीमकाय जोश था––यह हक़ीक़त की तेजस्वी कड़क थी––कैसे मुमकिन था कि इस आवाज़ के आगे वह इन्सान

बेजान पत्थर बना रहता जिसके सीने में ईमान की गरमी ने भट्टियाँ सुलगा दी थीं––यह आवाज़ सुनते ही उमर इब्ने ख़त्ताब ख़ड़े के खड़े रह गए––शर्म और पीड़ा के मिले–जुले जज़्बात में सर झुक गया। फिर नज़र उठी और बहन के चेहरे को जिस्म के खून और ईमान के जलाल (प्रताप) से सुर्ख़ देखकर अनायास आंखों में आंसू भर आए। आंसुओं का यह उबाल बता रहा था कि सीने की तमाम चट्टानें पिघल रही हैं।

"मेरी बहन––फ़ातिमा!" दर्द भरी आवाज़ में उमर इब्ने ख़त्ताब पुकार उठे––" मुझे भी तो वह चीज़ दिखाओ जिसको तुम लोग पढ़ रहे थे.....।"

भाई की ज़िन्दगी में जीवनदायी क्रान्ति की यह सुनहरी पौ फटते हुए देखकर बहन और बहनोई दोनों भूल गए कि अभी–अभी उनके साथ क्या सुलूक किया गया है, वह बेताब होकर उठे––बहन ने अपने भाई को गुस्ल (विधि पूर्वक स्नान) के वह नियम सिखाए जो इस पवित्र किताब को छूने से पहले ज़रूरी थे––और फिर किताब के अंश भी उनके सामने लाकर खोल दिये, जिसके अन्दर से खुदा की आवाज़ आ रही थी।

"ज़मीन और आसमान में जो कुछ है, वह सबका सब खुदा की पवित्रता का बखान करता है। खुदा ज़बरदस्त है––वह हकीम (तत्वदर्शी) है।"

उधर ज़ख़्मी बहन और बहनोई की आंखों में अथाह प्रसन्नता आँसू बनकर उबल पड़ी थी। यह देखकर कि उनके भाई कुफ़्र व शिर्क की दलदल से निकल कर हक़ को स्वीकार करने की दिशा में पल–पल आगे बढ़ते आ रहे हैं और उधर उमर इब्ने ख़त्ताब के सीने में हक़ की पहचान का अपार जज़्बा पैवस्त

होता जा रहा था। कुरआन ने एक–एक अक्षर में उनको अपने दिल की धड़कन सुनाई दे रही थी और दिल की धड़कनों की यह चोट उनकी आंखों को आंसुओं से भर चुकी थी, जब इस हालत में वह यहां तक पहुंचे किः

"लाओ ईमान अल्लाह और उसके रसूल पर"––तो अचानक पुकार उठेः अश–हदुअल–ला इला–ह–इल्ल– लल्लाह व अशहदु अन्–न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुह ।

"मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं और मैं गवाही देता हूं कि मुहम्मद (स0) अल्लाह के बन्दे और रसूल हैं।"

और अब –––अपने दिल और दृष्टि के मीनारों पर सच्चाई के दिए जलाए–– उमर इब्ने ख़त्ताब, हज़रत उमर इब्ने खत्ताब (र0) के आलीशान व्यक्तित्व में ढलते हुए एक बार फिर उसी रिसालत के कूचे की ओर रवाना हुए जिधर थोड़ी देर हुई, वह दुनिया का सबसे बड़ा जुर्म करने निकले थे––वह तलवार अब भी हाथ में थी, मगर तलवार उठाने वाला खुद ही हलाक हो गया था। अब उस तलवार की दिशा इस्लाम की तरफ़ नहीं, कुफ़्र की तरफ़ थी। अब रगों में दौड़ता हुआ खून बेक़रार था कि मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) की पाँव की धूल के एक–एक ज़र्रे को रंगीन कर दे।–– पर जब उनकी दस्तक सुनी गई और देखने वालों ने देखा कि उमर (र0) नंगी तलवार लिए आ रहे हैं तो ख़तरे का एहसास हुआ और उस ख़तरे का सामना करने के लिए ह0 अमीर हमज़ा (र0) ने ललकार सुनाई।

"आता है तो आने दो––अगर किसी बुरी नियत से आ रहा है, तो खुद उसकी तलवार से उसका फ़ैसला कर दूँगा।"

मगर हुज़ूर (स0) एक अजीब हर्ष से परिपूर्ण अवस्था में उठे। सबको रोका और ख़ुद आगे बढ़कर ह0 उमर (र0) के दामन को झटका देते हुए फ़रमाया ———"कहो उमर? —— किस इरादे से आए हो?"

गुलामों की तरह विनम्रता में डूबी हुई आवाज़ ह0 उमर (र0) के होंठों से बुलन्द हुई——"ईमान लाने के लिए"

हक़ की इस महाविजय पर अनायास रसूले ख़ुदा (स0) और सहाबियों (र0) के मुँह से नार–ए–तकबीर बुलन्द हुआ।

"अल्लाहु अकबर।"

"अल्लाहु अकबर" का यह आकाश भेदी नारा वादी–वादी, पवर्त–पर्वत गूंजता लहराता चला गया।

यह जय–विजय के नारे का वह क्रान्तिकारी मोड़ था जहां से ह0 उमर (र0) इस्लाम की गोद में दाख़िल हुए, इस नारे को सुनकर शैतानों की पंक्ति ने मातम शुरू कर दिया था। कुफ़्र और शिर्क के घरों में कोहराम मच गया था। आग और खून थूकते हुए कुफ़्र और शिर्क के दरिन्दे ह0 उमर (र0) के मकान पर चढ़ दौड़े। इस प्रदर्शन में आक्रोश था, नफ़रत और तिरस्कार था——बदले का जोश था—— दरिन्दगी और दहशत के कड़े तेवर थे और इन सब की पृष्ठभूमि में दिलों के अन्दर चुटकियाँ लेता हुआ पराजय का यह एहसास था कि कुफ़्र की बेहतरीन तलवार इस्लाम पर गिरते–गिरते ख़ुद कुफ़्र के सर पर बिजली बनकर गिर गई।—— कुफ़्फार व मुशरिकीन की बदले की भावना से बचाने के लिए ह0 उमर (र0) के मामूं ने एलान किया कि उमर (र0) उनकी पनाह में हैं।" मगर तलवार की तरह काटती हुई सैकड़ों नज़रों पर नफ़रत और उपेक्षा की निगाह डालते

हुए ह0 उमर (र0) ने एलान किया कि वह इस पनाह से खुद को निकालते हैं और बड़े से बड़े ख़तरों को केवल खुदा के भरोसे पर पूरी ताक़त से ललकारते हैं।

और सचमुच वह छः साल तक इन ख़तरों से बेधड़क टकराते रहे––जुल्म और अनाचार की तमाम शैतानी शक्तियों को ललकारते रहे–– और ठीक उस दौर में जबकि कुफ़्र व शिर्क की अत्याचारी ताक़त इस बात की सौगन्ध खा रही थी कि ईमान वालों को उनके घरों में भी खुदा का नाम न लेने देंगे। ह0 उमर (र0) ने तीन सौ साठ बुतों पर इस तरह ठोकर मारी कि अहले ईमान के साथ ख़ान–ए–खुदा में घुसकर नमाज़ पढ़ी––अत्याचार, अमानवीयता और अनाचार के जंगल में पांच–छः साल की लम्बी अवधि बिताने के बाद जब उन्होंने खुदा की राह में वतन का त्याग करके हिजरत (प्रस्थान) का संकल्प किया और हुजूर (स0) ने उनको इसकी इजाज़त दे दी तो उन्होंने एलान किया।

"मैं इस कुफ़्रो–शिर्क की दुनिया से दूर जा रहा हूँ–– जिसका जी चाहें वह मेरा पीछा करे और मेरी तलवार का स्वाद चख ले।"

लेकिन भरी बस्ती में कोई मुक़ाबले पर न आ सका––कैसे आ सकता था कोई? जब सच्ची ख़बर देने वाले (स0) का कहना था कि "ऐ उमर (र0) तुम से शैतान भी डरता है।"

हां! इतिहास उस इन्सान को कभी नहीं भूल सकता जिससे शैतान भयभीत रहता था।

तारीख़ जानती है कि यह हस्ती वह हस्ती थी जिसके सीने मं पैग़म्बरे खुदा (स0) की प्रार्थना की तपिश से खुदा ने ईमान की

ज्योति जलाई थी, मगर यह बात कम ही उभर कर सामने आती है कि पैग़म्बर (स0) की इस दुआ को वास्तविक रूप देने के लिए खुदा ने प्रकट संसाधनों के जगत में जिस हस्ती का चयन किया, वह एक औरत थी। एक कमज़ोर महिला जिसने असहनीय पीड़ा की अवस्था में पिसते हुए कहा था।

"ऐ उमर! जो बन आए कर गुज़रो––! अब इस्लाम इस दिल से नहीं निकल सकता।" न जाने कैसे होते थे वह "दिल" जिनमें एक बार इस्लाम दाख़िल हो जाता था तो फिर कभी नहीं निकलता था–– और न जाने क्या चीज़ था वह इस्लाम और ईमान कि उसकी एक ही आवाज़ कुफ़्र के बन्द तालों के फौलादी पट खोल देती थी–– जिसकी हूक से इन्सान सत्य की खरी पहचान का महान अधिकार प्राप्त करते थे–– कि जिनके ईमान के जलाल से शैतान भी पत्ते की तरह कांपता था।

और अब –– आह! हमारे पास न वो सीने रहे और न इस्लाम व ईमान––अब तो हम इस्लाम की आवाज़ बुलन्द करते हैं तो खुद हमारी ज़िन्दगी भी इसका कोई असर नहीं लेती, हमारी अपनी जड़ता भी टस से मस नहीं होती।

खुदा के लिए!––कोई बताओ क्या यह दोनों इस्लाम एक हैं?––एक हो सकते हैं? आत्मा इस कल्पना से ही कांपने लगती है कि क्या.....हम.....भी मुसलमान हैं? क्या..... हम भी इस क़ाबिल हैं कि खुदा की इस ज़मीन पर खड़े होकर सर उठाकर यह कह सकें कि हां हम मुसलमान हैं!––जब यहां यह आलम है तो फिर––वहां क्या हाल होगा जहां सब कुछ देखने और जानने वाला खुदा हमारे बारे में फ़ैसला कर रहा होगा––"फ़या लयतना फ़या हसरता"

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

10

ईमान प्रेमभाव एवं तेज का अद्‌भुत मिश्रण

खुदा की क़सम!

खुदा की क़सम!! मैं उस आदमी का सर उड़ा दूंगा जो यह कहेगा कि मेरा प्रिय आक़ा इस दुनिया से चला गया है।

रसूल (स0) की वफ़ात के जान लेवा और होश उड़ाने वाले हादसे पर ह0 उमर फ़ारूक़ (र0) की अजीब हालत थी––ज़िन्दगी भर वह जिस सम्पूर्ण इन्सान (स0) को दुनिया

की हर चीज़ और खुद अपनी जान से भी ज़्यादा चाहते रहे थे, उस हस्ती का इस दुनिया से उठ जाना कितनी बड़ी चोट थी? इश्क़े रसूल (स0) से जो दिल चूर–चूर था, एकदम चकनाचूर हो गया था और चेतना एक ज़बरदस्त आक्रमक जुनून के सामने से हट कर न जाने कहां गुम हो गई थी। लाखों टूटे हुए दिलों, सिसकते हुए सीनों, अश्कों से भरी आंखों और कांपते हुए खुश्क होंठों के बीच से खुदा के आख़री रसूल (स0) अपने खुदा के पास प्रस्थान कर चुके थे मगर यह एक ऐसी आकाश भेदी वास्तविकता थी जिसको सहना तो दूर की बात है, उसको सुनने की शक्ति भी ह0 उमर (र0) खो चुके थे––वह दीवानों की तरह मस्जिदे नबवी में इधर से उधर टहल रहे थे––नंगी तलवार के दस्ते पर हाथों की फ़ौलादी पकड़ में अकड़न की दशा पैदा हो रही थी और भावनात्मक जुनून की यह ललकार उनके होंठों पर रह–रह कर तड़प उठती थी।

खुदा की क़सम!––मैं इस शख़्स का सर क़लम कर दूंगा जिसने यह कहा कि मुहम्मद (स0) इस दुनिया से कूच कर गए–––

खुदा की क़सम!

तौहीद व रिसालत पर जी–जान से फ़िदा होने वाला कैसा इश्क़ के क़ाबिल मोमिन बन्दा था यह शख़्स!––यह कहां से चला था और ––कहां जा पहुंचा। हक़ से अपरिचित होने के दौर में एक दिन ऐसा भी आया था जब यही इन्सान तलवार सूंते मुहम्मद (स0) को शहीद कर देने की क़सम खाता हुआ निकला था लेकिन जूं ही कुरआन के क्षितिज से उबलती हुई रौशनी को देख की उसने रूह और दिल की मेहराबों पर ईमान और विवेक के दिये जलाए–––बस उसी पल उसने अपनी इस्लाम से पहले की ज़िन्दगी पर वही तलवार बेधड़क चला

दी। फिर जंगे बदर के धैर्य की परीक्षा लेने वाले मोर्चे पर उसकी यह तलवार बिजली बनकर चमकी और ईमान के मुक़ाबले में नस्ल और खून के तमाम रिश्तों को ललकारती चली गई। उसका अपना मामूं आस–बिन–हिशाम भी खुदा और रसूल (स0) के ख़िलाफ़ हथियार उठाने का अनुचित साहस करने के बाद उसके स्वाभिमानी सत्य की नंगी तलवार के आगे अपनी जान सलामत न ले जा सका। जिन हाथों ने खुदा के ख़िलाफ़ हथियार उठाये थे, वह हाथ उसने क़लम कर दिये और जिस सर ने खुदा की महानता के आगे झुकने से इनकार किया था उसको सदा के लिए धूल – धुसरित कर दिया। फिर खून व ईमान और शरीर व आत्मा के बीच संघर्ष व कठिन मार्ग की घाटियाँ तय करने के बाद उसने इस्लामी परचम के क़दमों में बड़े–बड़े मक्के के काफ़िरों को जंगी क़ैदियों के रूप में पड़ा हुआ देखा तो वह अनायास पुकार उठाः

"उन लोगों की जान नहीं बख़्शी जाए जो जान देने वाले के ज़लील बाग़ी हैं। यह सबके सब गर्दन काटने के लायक़ हैं––आओ हममें से हर शख़्स आगे बढ़े और यह बताए कि यह खुदा के नहीं तो हमारे भी कुछ नहीं–– आओ हम में से हर शख़्स इनमें से अपने निकट सम्बन्धियों का अपने हाथ से वध करके खुदा के क़दमों में डाल दे–––''

––फिर गज़वए उहद में यही तलवार चमकी–– फ़ौलाद का जिगर चीरती हुई तलवार––लेकिन जैसे ही मुहम्मद (स0) की शहादत की झूठी ख़बर जंग के मैदान में उनको सुनाई दी, उसके बाजू एकदम से बेजान हो गए और उसकी चट्टानी हिम्मत मोम की तरह पिघलती चली गई–– लेकिन यह सुनते ही कि मुहम्मद (स0) हमारे बीच ज़िन्दा सलामत हैं वह शेर की तरह उठा और उस वक़्त भी सत्य की स्वाभिमानी गरज से असत्य का सीना दहलाता रहा। जब विजयी इस्लाम कुछ लोगों

की ग़लती की बुनियाद पर पराजय के खून में डूबे भावार्थ समझा रहा था––जब पहाड़ की चोटी पर ज़ख्मों से चूर–चुर मोमिन पैग़म्बरे इस्लाम (स0) के मुक़द्दस चेहरे को खून से सराबोर देखकर तड़प रहे थे और अपने घायल हाथों से हुजूर (स0) के ज़ख़्म धो रहे थे तो उमर (र0) ज़ख़्मी शेर की तरह अबू सुफ़यान के कुफ़्र के नारे के ख़िलाफ़ यूँ गरज रहे थे।

''––अल्लाह–– सबसे महान है––अल्लाह की बड़ाई की कोई हद नहीं––और अल्लाह हमारा है, तुम्हारा नहीं। सुन ले ओ खुदा के दुश्मन कि हम सब ज़िन्दा हैं––मुहम्मद (स0) भी ज़िन्दा हैं––अबू बकर (र0) भी और उमर (र0) भी–– ताकि कुफ़्र को बुरे परिणाम तक पहुंचा कर दम लें––।"

ग़ज़वए ख़न्दक़ की बरफ़ानी रातें भी फिर उमर (र0) के सीने की आग ठन्डा न कर सकीं। खाई के जिस किनारे पर वह हुजूर (स0) के शुभ आदेश पर झुलसते हुए दिन और ठिठुरती रातों में एक ज़बरदस्त चट्टान की तरह बातिल के टिड्डी दल के ख़िलाफ़ डटे रहे थे, वहां आज भी मोमिन मर्द की यादगार में मस्जिदे उमर क़िबले की दिशा में खड़ी है। यही वह जगह है जहां उमर इब्ने ख़त्ताब (र0) ने तीरों की बौछार की दिशा में और तलवारों की छाँव में जिहाद व अज़ीमत (कठिन मार्ग का चयन) की नमाज़ पढ़ी थी। सुलह–ए–हुदैबिया के संवेदनशील अवसर पर जब खुदा के दूर के भेद के इशारे से अल्लाह के रसूल (स0) दीखने में दबकर सन्धि और शान्ति का आह्वान कर रहे थे तो उमर (र0) की सत्य पर आधारित बेताबी देखने के क़ाबिल थी। उनकी समझ में ही नहीं आता था कि जब तक उमर (र0) के हाथ में तलवार और सीने में हक़ की तपिश है, वह किस तरह यह मन्ज़र देखने की ताब लाए कि सन्धि और अमन की दावत के लिए हुजूर (स0) को ज़रा भी दबना पड़ रहा है।––हाय वह शिष्टाचार की हद में रहते हुए

सत्यनिष्ठा में उनकी ग़ैरतमन्द बेचैनी––हाय वह बारगाहे रिसालत में खुदा के उस जाँनिसार बन्दे का बच्चों की तरह मचलना।

''ऐ खुदा के रसूल (स0)–––क्या––– हम हक़ पर नहीं हैं?'' लेकिन अल्लाह–अल्लाह! वह झुकने और समर्पित होने की महान प्रवृत्ति कि जैसे ही सत्य के प्रति गौरवान्वित उस समर्पित व्यक्तित्व को मुहम्मद (स0) की जुबान से यह पता चला कि यह जो कुछ हो रहा है वह खुदावन्द के आदेश के ठीक–ठीक इशारे पर हो रहा है तो दुनिया ने देखा कि ह0 उमर (र0) फ़ौरन समर्पण के सजदे में गिर गए––सजदे से सर उठाया तो क़दम–क़दम पर ग़ैब (अदृश्य) पर ईमान को पूरे यक़ीन के दर्जे तक पहुंचाने वाले वाक़्यात पेश आये और इस्लाम की उस छा जाने वाली शान के क्षितिज से विजयी भविष्य के हज़ार सूरज उगते चले गए।

''ऐ खुदा के रसूल (स0)!'' एक दिन ह0 उमर(र0) ने हुजूरे अकरम (स0) को देखकर वालेहाना अन्दाज़ में अर्ज़ किया––''मुझे अपनी जान के सिवा दुनिया जहान की हर शै से ज़्यादा आप (स0) ही प्रिय हैं––''

यह उस श़ख़्स के भारी शब्द थे जिसकी ज़िन्दगी ग़ज़वए तबूक के अवसर पर ईशप्रेम से दो हिस्सों में बंट गई थी––जिसने पूरे जीवन में ज़िन्दगी के सरमाए के दो बराबर टुकड़े करके एक दुनियादारी के लिए छोड़ा था और दूसरा दीन के हादी (स0) के क़दमों में केवल एक जंगी मुहिम के लिए ला डाला था––उफ़! कितने जानदार होते हैं, उस शख़्स के अलफ़ाज़ जिसके व्यवहारिक जीवन का आधार जज़्बा और जुनून लफ़्जों से आगे हो। हमेशा आगे ही आगे। लेकिन ईमान की पूर्णता तो आकाशगंगा से भी बुलन्द है। यहां तक पहुंचने के लिए शब्द

और आचरण की इतनी महान यात्रा भी काफ़ी न थी––एक आसमानों को छू लेने वाली मंज़िल जिसका जिज्ञासु जज़्बे और जुनून के पर लगाकर खुदा की सिम्त में उड़ता है तो सारे जहान के साथ खुद उसकी अपनी जान की मुहब्बत भी उसको पुकारती हुई पीछे फड़फ़ड़ाती रह जाती है––मगर इश्क़े रसूल (स0) का परवाना उस वक़्त तक नहीं रूकता जब तक तौहीद की शमा के तवाफ़ (परिक्रमा) में उसका सब कुछ काम न आ जाए।

"नहीं उमर!" सरकार (स0) ने जवाब दिया––ईमान तो पूरा तभी होगा जब कि मैं तुम्हें अपनी जान से भी ज़्यादा प्रिय लगने लगूँ।"

अचानक एक बिजली सी चमकी, एक ख़ामोश ज़लज़ला सा आया और फिर उसी क्षण उमर (र0) के सीने में इश्क़े रसूल (स0) के भाव असीम बाढ़ में बदलते चले गए–––पूरे समर्पण की मंज़िल तक पहुंचने में सिर्फ़ एक क़दम का फ़ासला देखकर ईमान के कमाल के लिए तरस्ती हुई ज़िन्दगी ने छलाँग भरी और पलक झपकते ही ईमान के कमाल की मंज़िल को छू लिया।

ऐ खुदा के रसूल (स0) उमर (र0) की रूह ने हुजूर (स0) को हमेशा से ज़्यादा समर्पण की हालत में पुकारा––"अब आप मुझे अपनी जान से भी ज़्यादा अज़ीज़ हैं।"

उस दिन वह रसूल (स0) की महफ़िल से एक नई तड़प लेकर उठे–– और फिर आजीवन इस तड़प ने उनको कहीं चैन से बैठने न दिया––इसमें न जाने किस बला का सुरूर व सुकून था कि विलासिता उनके पाँव पड़ती थी मगर वह उसे ठोंकर मारते थे। मनोविनोद उनके हाथों को चूमते थे मगर वह दोनों

को घबरा–घबरा कर झटकते थे––ईंट–पत्थर और सोने–चाँदी की इस दुनिया में बैठकर वह हर लम्हा सोते–जागते खुदा के उन सदाबहार जन्नत के बाग़ों को सजल नयन होकर चाहत की नज़रों से तकते जा रहे थे, जिनके किनारे सदा की नहरें अनन्त काल का मनभावन संगीत बिखेरते हुए बह रही हैं––बहती चली जा रही हैं–– न जाने कहां से––न जाने कहां तक?

हुज़ूर (स0) की ज़िन्दगी का यह पहलू ह0 उमर (र0) के सामने था कि सत्य अपनी विजय और सफलता के लिए संसाधनों का मोहताज नहीं–– एक अकेला इन्सान केवल खुदा के भरोसे पर कुफ़्र और पशुता के हौलनाक जंगल में खड़ा होकर हक़ की आवाज़ बुलन्द कर सकता है। तेरह साल तक जुल्म और दमन की बदतरीन चक्की भी इन्सानी हड्डियों को तो पीस डाल सकती है मगर इस हक़ की अवाज़ को कुचल नहीं सकती––इस हक़ और सदाक़त के सिर्फ़ 313 तीन सौ तेरह बे सरो सामान शैदाई तेरह साल के दमन का खून टपकाते हुए उड़ते हैं तो बदर के मोर्चे पर सैकड़ों खून के प्यासों की कलाईयाँ मरोड़ देते हैं और आख़िर––आख़िर मक्का की फ़तह के रौशन दरवाज़े से यही हक़––"जाअल हक़्क़ः व ज़–ह–क़ल बातिल, इननल बातिलः कानः ज़हूक़ा" का एलान सुनाता हुआ आता है तो बातिल को न ज़मीन पर पनाह मिलती है और न इन्सान के तंग व अंधेरे सीनों में।

ख़िलाफ़त की बागडोर संभालते ही ह0 उमर (र0) हुज़ूर (स0) के उसी शुभ आचरण पर बे झिझक चलते गए––उन्होंने जज़ीरा नुमाए अरब के चटियल रेगिस्तान में खड़े होकर बाग़ों और खेतियों से लदे हुए देशों को ललकारा––क़ैसर व किसरा की ताक़तों को खुदा की सार्वभौम सत्ता का तेजस्वी सन्देश भेजा तो सैकड़ों साल की टिकाऊ हुकूमतों के पड़खच्चे उड़

गए––क़ैसर के वैभव और गौरव को नारा–ए–तकबीर से पाश–पाश कर डाला। मिस्र के फ़िरऔनों की धरती पर आसमानी क़ानून लागू किया।

हक़ की सुरक्षा में एक अटल चट्टान बन जाना और हक़ की पैरवी में मोम से ज़्यादा नरम हो जाना उन्होंने अपने स्वामी सेसीखा था। यह बात उनके लिए कुछ मुश्किल न थी कि महान विजयों के नायक ह0 सअद इब्ने वक़ास (र0) के कूफ़े के महल की ड्योढ़ी को आग लगाने का हुकम दें क्योंकि सम्भावना थी कि यह ड्योढ़ी शासक और जनता के बीच इन्साफ़ कीराह में दीवार बनकर रुकेगी––इन्साफ़ जो तक़वे से निकटतम है, उसकी हिफ़ाज़त की गई और हज़रत सअद बिन वक़ास (र0) की आंखों के सामने ह0 उमर (र0) के दूत ने इस ड्योढ़ी को आग के हवाले कर दिया। उनके लिए यह भी कुछ कठिन न था कि ह0 ख़ालिद बिन वलीद (र0) को जंग के मैदान में ही इसलिए सेनापति के पद से हटा दें क्योंकि अन्देशा हो चला था कि इस्लामी विजयों के लिए केवल अल्लाह की तरफ़ देखने के बजाय लोग ख़ालिद (र0) की तलवार की ओर देखने लगे हैं। यह सब कुछ उनके लिए बहुत आसान था––लेकिन यह बात उनके बस में न थी कि कोई भी शख़्स––मामूली से मामूली शख़्स उठकर उन्हें खुदा से डराए और वह ख़ौफ़ और ईशभय की तीव्रता से पत्ते की तरह कांप न जाएं।

एक बार ख़िलाफ़त के दौर में जब वह किसी समस्या पर उपदेश दे रहे थे तो एक मामूली सा आदमी तक़रीर के बीच में खड़ा हो गया और कड़वी व असभ्य शैली में बोलाः

"इत–तकुल्लाह––या उमर!––ऐ उमर! अल्लाह से डर।" एक ही भाषण में एक ही शख़्स ने यह हस्तक्षेप बार–बार किया तो

सभी उपस्थित लोग इस अनुचित आलोचना पर आक्रोशित हो गए और चाहा कि उस आदमी का मुँह बन्द कर दें––लेकिन वह बन्दा–ए–मोमिन जो सहनशीलता की पराकाष्ठा से मिम्बर पर आसीन यह आलोचना के कचोके लगातार सह रहा था और उफ़ तक नहीं कर रहा था, लोगों की उत्तेजना पर ख़फ़ा हो गया।

"नहीं–नहीं" ख़ौफ़ और ईशभय में डूबी हुई आवाज़ ह0 उमर (र0) के मुँह से बेताबी से निकली––नहीं–नहीं! कहने दो। अगर यह लोग न कहें तो यह लक्ष्यहीन हैं और हम न सुनें तो हमारा उद्देश्य कोई नहीं।"

एक बार मेहर की रक़म को घटाने के लिए उन्होंने अमीरूल मोमिनीन के महान पद से उम्मत को ख़िताब (सम्बोधित) किया कि अचानक तक़रीर के बीच एक औरत ने किताब व सुन्नत का सन्दर्भ प्रस्तुत करके ह0 उमर (र0) की बात को नकारते हुए पूरी ताक़त से कहा––

"ऐ उमर!––अल्लाह से ख़ौफ़ खा।"

और ह0 उमर (र0) को फ़ौरन ईशभय ने पकड़ लिया। वह पूरे जोश से बोलते–बोलते इस आवाज़ पर गुंग हो गए और खड़े–खड़े कांपने लगे।

"मदीने की औरतें भी–––!" हक़ के आगे बे–झिझक हथियार डाल दिए और उस महिला के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए उन्होंने फ़रमाया––"मदीने की औरतें भी ह0 उमर (स0) से ज़्यादा जानती हैं।"

रसूल (स0) के मार्ग पर चलने की उनको कैसी चाहत थी इसका कुछ अन्दाज़ा इस रिवायत से होता है––ह0 जाबिर (र0) का कथन है––कहा जाता है कि एक बार हुज़ूर (स0) ने तोहफ़े में आई हुई एक छपे रेशम की क़बा (चोग़ा) धारण की––लेकिन बन्दगी की इस प्रतिमूर्ति को देर तक इसको पहने रहना गवारा न हुआ। बहुत जल्द आप (स0) ने इसको उतार दिया और ह0 उमर (र0) को यह तोहफ़ा भिजवा दिया। कुछ देर न हुइ थी कि यह अमूल्य उपहार लिए हुए ह0 उमर (र0) बारगाहे रसूल (स0) में दौड़े हुए आए तो उनकी आंखों में आँसू थे और आवाज़ रुंधी हुई थी।

"हुज़ूर(स0)" वह बच्चों की तरह रो पड़े––"मैं इस चीज़ को आख़िर क्या करूं जिसको आपने नापंसद फ़रमाया है–––?"

सुन्नते रसूल के परवाने को उस वक़्त क़रार आया जब यह पता चला कि यह लिबास पहनने के लिए नहीं भेजा था, बल्कि मक़सद यह था कि इसको बेचकर इसकी रक़म को बेहतरीन काम में लाया जाए।

ठीक उस वक़्त जब ग़रीबी और भूख की लम्बी परीक्षा में खरा उतरने के बाद अल्लाह के बन्दों पर दुनिया की आमद हो रह थी––सोने–चांदी का एक सैलाब था जो क़ैसरो–किसरा के जीते हुए ख़ज़ानों से बहता चला आ रहा था––ग़रीब खुशहाल और अभावग्रस्त मालामाल हो रहे थे––हां ठीक उसी वक़्त उमर (र0) दुनिया की दौलत से दामन समेट कर "मूतू क़ब्लः अन तमूत" की ज़िन्दा तसवीर बनते जा रहे थे। खुदा से मुलाक़ात की आरज़ू में गुम होकर उन्होंने खुद को जीते जी कफ़न पहना लिया था। जन्नत में ग़फ़ूर और रहमान खुदा के आतिथ्य की कल्पना में डूबे वह ख़िलाफ़त के सिंहासन पर बैठे हुए छोटे–मोटे खाने खाते थे और भूखों का पेट भरने के लिए

एक मज़दूर की तरह अनाज की बोरियां ढो–ढो कर भूखों के घर पहुंचाते थे।

ऐसी ही तो एक रात थी जब एक दूर–दराज़ झोंपड़ी में चूल्हा ठण्डा पाकर वह बैतुल माल (राजकीय कोषागार) तक हांपते–कांपते आए थे और फिर वहां से खाने का भारी सामान अपनी कमर पर लादे हुए लरज़ते और डरते हुए उसी दूर–राज़ घर की तरफ भागे जा रहे थे। गुलाम प्रार्थना करता हुआ पीछे–पीछे दौड़ा कि आप थकन से चूर हैं, खुदा के लिए यह बोझ मेरी कमर पर लाद दीजिए––वरना आख़िर मेरे अस्तित्व का मक़सद क्या है?––उन्हें तो खुद अपने जीने का उद्देश्य तड़पाये हुए था––वह तो खुदा के बन्दे थे और उन्हें अपनी प्रजा के दुःख–दर्द का पूरा हिसाब खुदा को देना था। जब गुलाम ने बहुत ज़ोर दिया तो इन शब्दों में उन्होंने दिल व जिगर का लहू निचोड़ा––

"बता क्या उस दिन भी जब खुदा की अदालत में मेरे लिए पुकार लग रही होगी, तू मेरा बोझ उठा सकेगा––?"

ह0 इमाम हसन (र0) का बयान है कि अमीरूल मोमिनीन के अज़ीम पद पर आसीन ह0 उमर (र0) मुस्लिम उम्मत के सामने जुमे का खुतबा (सम्बोधन) पेश कर रहे थे और ठीक उस वक़्त जब वह अल्लाह के बन्दों को आख़रत की घाटियां याद दिलाकर अल्लाह के तेज से लरज़ रहे थे तो मैंने देखा कि अल्लाह का यह विनम्र बन्दा पूरे बारह पेवन्द का तहबन्द बांधे हुए था।

इस दुनिया में किसी भी वक़्त उनको अपने कफ़नाए जाने का इतना यक़ीन था कि एक ही जोड़े को खुद धोते और सुखाते हुए वह इस नश्वर संसार में अपने दिन काट रहे थे। यह जोड़ा

फट कर भी बदन से जुदा न होता था––हाय यह संयमी लिबास, अनेक पेवन्द फिर उन पर पेवन्द की सीख देने वाली परिस्थितियों से गुज़रता था–अनस बिन मालिक (र0) से पूछ लीजिए कि क्या उन्होंने ख़त्ताब के बेटे के शरीर पर ख़िलाफ़त के युग में वह कुर्ता नहीं देखा था जिसके कन्धों पर पेवन्दों के सिवा कुछ भी नज़र न आता था।

खुदा की क़सम! यह परिधान गवाही दे रहा है कि उमर बिन ख़त्ताब (र0) मन के भीतर से बस खुदा के ख़रीदार थे और खुदा के ख़रीदार को दुनिया की दौलत के ख़ज़ाने कभी नहीं ख़रीद सकते। इसी ईमान प्रेरित गुदड़ी में वह इस्लामी हुकूमत के सरकारी निरीक्षणों पर जाते और बड़ी–बड़ी सल्तनतों के सम्राटों सेआंखें चार करते थे––फ़िलिस्तीन की मुहिम पर जब उन्हें व्यक्तिगत तौर पर रवाना होना पड़ा तो जिस्म पर वही पेवन्द से भरा जर्जर कुर्ता था––सर पर वही फटी हुई पगड़ी और पाँव में वही टूटी हुई जूतियाँ––सवारी ज़रूर उनके साथ थी– मगर यह सवारी जब इसाईयों के फ़िलिस्तीन में प्रवेश कर रही थी तो सवारी की बाग उनके हाथ में थी और सवार वह गुलाम हमसफ़र था जिसकी सवारी की बारी उस मक़ाम पर आ गई थी।

यह देखकर कि दिन–ब–दिन बढ़ती चमकती–दमकती इस्लामी सल्तनत का यह खुदा से डरने वाला राष्ट्राध्यक्ष दि–ब–दिन खुद को क़ब्र ही में उतारे चला जा रहा है, एक बार उनके पास उम्मत की माताओं–ह0 आयशा (र0) और हज़रत हफ़सा (र0) का प्रतिनिधि मण्डल पहुंचा और परिस्थितियों की संवेदनशीलता समझाई––आप अपने लिबास की तरफ़ थोड़ा सा ध्यान दें––आपको क़ैसर व किसरा के राजदूतों से मिलना पड़ता है और मुसलमानों को शर्म आती है––।"

अफ़सोस ! ठण्डी आह खींचते हुए ह0 उमर (र0) ने कहा––"अफ़सोस! तुम दोनों उम्मत की माएं होकर मुझे सांसारिक मोह के लिए प्रेरित कर रही हो। ऐ आयशा (र0) क्या तुम रसूलुल्लाह (स0) की उस हालत को भूल गईं कि तुम्हारे घर में केवल एक कपड़ा था जिसको दिन में बिछाया जाता और रात को ओढ़ लिया जाता––और ए हफ़सा (र0) तुमको याद नहीं कि एक बार तुमने सोने के फ़र्श को दोहरा करके बिछा दिया था तो रसूलुल्लाह (स0) इस नरमी की वजह से रात भर सोते रह गए, और फिर बिलाल (र0) की अज़ान पर घबराकर हुजूर (स0) की आंख खुली तो आप (स0) ने तुम्हारे इस अमल पर दुःख जताते हुए फ़रमाया–– कि–– "मुझे दुनिया की राहत से क्या लेना–देना और फर्श की नरमी से तुमने मुझे क्यों आलस में डाल दिया?"

न जाने किस मनोदशा में ह0 उमर (र0) दिल का दर्द बखेर रहे थे कि उम्मत की माएं सहसा रो पड़ीं और देर तक रोती रहीं––खुद ह0 उमर (र0) का पूरा अस्तित्व जैसे आंसुओं में स्नान कर रहा था।

एक बार फ़क़ीरी सल्तनत का यह शहनशाह शाम के सफ़र पर निकला तो वहां के अफ़सरों को देखा कि वे विलासिता पूर्ण हरीर व दीबा की पोशाक में उनका भव्य स्वागत करने आये हैं। यह मन्ज़र देखकर उनका चेहरा कभी दुःख की इन्तेहा से ज़र्द होता था तो कभी क्रोध से तमतमा उठता था। यह एहसास उनकी धड़कनों पर कचोके दे रहा था कि सल्तनत के भव्य फैलाव के साथ वह फ़क्र (साधुता) सिमट रहा है–– जिस पर हुजूर (स0) गर्व करते थे। अपने इस स्वागत और सम्मान पर वह अपने हाथ से ख़ाक डालते हुए ग़म और गुस्से के आलम में आगे बढ़े और उन शानदार पोशाकों पर कंकड़ियां मारते हुए

बोले–– "तुम!–––तुम!–––इस हाल में मेरा इस्तक़बाल करते हो?"

उन्होंने अहनफ़ बिन क़ैस को एक जमाअत के साथ इराक़ की एतिहासिक मुहिम पर रवाना किया था। यह लोग वहां से विजयी होकर पलटे तो उनके जिस्म पर चमकते–दमकते परिधान नज़र आ रहे थे। ह0 उमर (र0) के दिल पर यह तब्दीली तीर बनकर लगी। इतने ख़फ़ा हुए कि उन लोगों को देखकर गुस्से से मुँह फेर लिया––जलाले उमर (र0) से सहमे हुए यह लोग दरबारे ख़िलाफ़त से उठ आए और अरब की सादा पोशाक पहनकर दोबारा सेवा में हाज़िर हुए। अब उनको ह0 उमर (र0) नें देखा तो खुशी से बेक़ाबू हो गए––बेताबी से अपनी जगह से उठे और उन सबको एक–एक करके सीने से चिमटा लिया और इस तरह सत्यवादियों के सादगी से पुर दामन को खुशी और आदर–सत्कार के अश्कों से तर कर दिया।

हाय यह अल्लाह का बन्दा जब ख़िलाफ़त के ख़ज़ानों की चाबियाँ जेब में डाले हुए सरकारी दौरों के अवसर पर आराम से पेड़ों की छाँव में और धूल के फ़र्श पर लेट जाता था तो देखने वालों को इस हक़ीक़त का कैसे यक़ीन आता होगा कि मोमिन का घर तो बस खुदा की जन्नत ही है और इस नश्वर संसार में तो इसकी हैसियत एक यात्री बल्कि केवल एक राहगीर की है और बस––शाम के सफ़र के अवसर पर जब इस्लाम की विजयी शक्तियों ने उनको एक क़ीमती पोशाक भेंट करना चाही और सवारी के लिए एक तेज़ रफ़्तार तुर्की घोड़ा पेश किया तो उन्होंने दर्द भरे अनदाज़ में कहा––"खुदा ने हमको जो इज़्ज़त दी है, वह इस्लाम की इज़्ज़त है और हमारे लिए तो वही बस है––?"

वह दिल की गहराईयों से अल्लाह के गुलाम थे, इसलिए गुलामों का दर्द उनके दिल में कूट–कूट कर भरा था और इस तरह वह हुज़ूर (स0) की उस दर्द से भरी वसीयत पर जानो–दिल से चलते रहे जब आप (स0) ने दुनिया से जाते–जाते आख़री हज के अवसर पर यह ज़ोर देकर कहा था और अन्तिम समय पर जब आवाज़ ने साथ छोड़ दिया था तो अपने लबों की आख़री हरकत से यह दर्द भरी चेतावनी दी थी कि––"नमाज़!–––नमाज़!–––और जो तुम्हारे आधीन हैं–––।" इसलिए ह0 उमर (र0) ने ख़िलाफ़त की बाग–डोर संभालते ही अरबी गुलामी (दासता) को अपने क़लम से ख़त्म कर डाला था और गुलामों के साथ अच्छे व्यवहार की शानदार मिसाल पेश करके––मानो हर तरह की इन्सानी गुलामी के शरीर से जान ही निकाल दी थी।

आप अपनी कमर पर लादकर बैतुलमाल (सरकारी कोश) से खाने–पीने का सामान ले जाते और रात के सुकून भरे क्षणों में गुलामों को पाँव फैलाकर सोता हुआ छोड़कर यह सामान स्वयं ग़रीबों और असहायों को दूर–दराज़ मुहल्लों में बांटते थे––फ़िलिस्तीन के तारीख़ी सफ़र में उनकी सवारी पर उनका गुलाम सवार था और वह खुद एक गुलाम की तरह सवारी की बाग पकड़े हुए अपने लिबास और क़दमों को धूल–धुसरित करते हुए चले जा रहे थे। एक दिन दान में दिए गए किसी ऊँट के शरीर पर तेल की मालिश अपने हाथों से करते हुए पसीना–पसीना हो रहे थे कि किसी मुसलमान ने पास आकर दुःख भरी शिकायत की––"यह काम आप खुद क्यों कर रहे हैं ऐ मोमिनों के सरदार!––किसी गुलाम की सेवा ले ली होती––।" तेज़ और कड़वे अन्दाज़ में आपने उस शख़्स की तरफ़ देखा––जैसे कहने वाले ने उनका सम्मान नहीं अपमान किया हो।

"आख़िर मुझसे बड़ा गुलाम कौन हो सकता है?" आप ने पलट कर जवाब दिया––"जो व्यक्ति मुसलमानों का शासक है वह उनका गुलाम भी है।" कहने वाला अपना सा मुंह लेकर चला गया और ह0 उमर (र0) फिर इसी काम में जुट गए।

ख़िलाफ़त का ही ज़माना था और ह0 उमर (र0) सर पर चादर डालकर किसी ख़ास मिशन पर रवाना हुए थे, वापसी में बुरी तरह थक गए थे। देखा कि एक गुलाम गधे पर सवार जा रहा है–– आप ने उसको आवाज़ दी और कहाः

"मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि मुझे भी अपने साथ बिठाकर ले चलो––।"यह सुनना था कि गुलाम अदब और खुशी की इन्तेहा में सवारी से उतर कर खड़ा हो गया और बोलाः

"ऐ अमीरूल मोमिनीन! पालकें बिछाता हूं। यह सवारी पूरी की पूरी ख़िदमत में हाज़िर है।" "नहीं"––ह0 उमर (र0) ने साफ़ जवाब दिया––"यह नहीं हो सकता कि तुम्हें मेरी वजह से तकलीफ़ उठानी पड़े।"

"तो फिर क्या हुक्म है?"

"तुम जिस तरह बैठे थे, उसी तरह बैठ जाओ।" ह0 उमर (र0) नें सीधा सादा हल पेश करते हुए कहा––"और मैं तुम्हारे पीछे बैठ जाऊँगा।"

अतः गुलाम को मजबूरी में ऐसा ही करना पड़ा। जब यह अजीबो–ग़रीब सवारी मदीने की गलियों में दाखिल हुई तो लोग हैरत से यह दृश्य फटी–फटी आंखों से देखकर इशारे कर रहे थे––"देख रहे हो। गुलाम कहाँ बैठा हुआ है और अमीरूल मोमिनीन कहाँ।––?"

एक बार सफ़वान बिन उमय्या ने उनकी सेवा में स्वादिष्ट भोजन सजाकर भेजा तो उसके चारों ओर फ़क़ीरों और गुलामों की भीड़ जमा कर ली और उनके साथ बैठकर यह खाना खाया और खिलाया––समानता और भाईचारे की पवित्र बलिदान स्थली पर इस तरह अरबी गौरव और दिखावे को भेट चढ़ाने के बाद आपने फ़रमाया––खुदा की फटकार हो इन सरफिरों पर जो गुलामों के साथ खाना खाने से हिचकते हैं।"

खुद अपने खाने–पीने का यह हाल था कि उनके शाही दस्तरख़ान से लोग जान बचाकर दूर भागते थे। इस शाही भोज में सूखी रोटियों और बेमज़ा सालनों के सिवा और होता ही क्या था? ह0 हफ़्स बिन अबिल आस (र0) जो बहुत बार खाने के वक़्त मौजूद रहते थे, अमीरूल मोमिनीन (र0) के साथ खाना खाने का दिल गुर्दा पैदा न कर सके। "क्यों भई?"––एक दिन ह0 उमर (र0) ने आख़िर उनसे पूछ ही लिया––"तुम हमारे साथ खाना खाना पसन्द क्यों नहीं करते?"

"जी!" ह0 हफ़्स (र0) हैरान थे कि भला वह बात उन्हें खुद क्यों पता नहीं––कुछ देर सोचा किये––आख़िर फिर साफ़–साफ़ कह दिया––"बात यह है ऐ अमीरूल मोमिनीन, अपना मज़ेदार खाना छोड़कर आपका यह बेहद मोटा–झोटा खाना गले से उतारना हमारे बस का काम नहीं।"

असहनीय पीड़ा का एक अजीब ईमान–वर्धक रंग ह0 उमर (र0) के चेहरे पर खेलने लगा–– फिर आख़रत के ग़म में भीगी–भीगी आंखों में ईमानी जलाल की चमक पैदा हुई।

"क्या तुम समझते हो––दर्दे दिल से दहकता हुआ जवाब ह0 उमर (र0) के होंठों पर आ ही गया––"क्या तुम समझते हो कि मैं क़ीमती और स्वादिष्ट खानों की हैसियत नहीं रखता? क़सम

है उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, अगर क़यामत का धड़का न लगा होता तो तुम लोगों की तरह मैं भी दुनिया की विलासिता पर आकर्षित होता––।"

एक बार अतबा बिन फ़रक़द को मजबूरन खाने में शरीक होना पड़ा––बैठने को तो बैठ गए, मगर ऐसा लगता था कि वह बेमज़ा उबला हुआ गोश्त और सूखी हुई रोटी खा तो क्या रहे हैं, मुश्किल से ज़हरमार कर रहे हैं। ह0 उमर (र0) की निगाह उठी तो उनकी हालत रहम के क़ाबिल लगी।

"तुम से कुछ खाया नहीं जा रहा है तो मत खाओ।" उन्होंने अपने भोज–सहभागी को इस बेबसी से निकलने की छूट देते हुए कहा और फिर शुक्र अदा करते हुए खाना शुरू कर दिया।

"ऐ अमीरूल मोमिनीन!" अतबा बिन फ़रक़द ने ह0 उमर (र0) का यह मूड देखा तो कुछ हिम्मत बंधी और मुहब्बत भरी झुंझलाहट के साथ कह दिया––"अगर आप अपने खाने–पहनने में कुछ ज़्यादा खर्च करने लगें तो मुसलमानों का ख़ज़ाना खाली न हो जाएगा।"

एकदम ह0 उमर (र0) खाते–खाते रुक गए। दिल की चोट आंखों से ज़ाहिर हुई––"अफ़सोस!" ठण्डी आह खींचते हुए उन्होंने बस इतना फ़रमाया––"तुम मुझे दुनिया के ऐश की पट्टी पढ़ाते हो––!"

कुछ ऐसी ही थी इस हस्ती की ज़िन्दगी जिसे इस दुनिया में दस खुशनसीबों के साथ रसूले खुदा (स0) की ज़बान से जन्नत की ख़बर मिल चुकी थी––कहां हैं वह लोग जिनका एक–एक सांस दुनिया की चाहत में गुज़र रहा है? जिनका पूरा अस्तित्व नश्वर दुनिया के क़दमों में पड़ा है, मगर फिर भी रहीम और

करीम खुदा के लिए वह आएं और दोज़ख़ के ख़तरे के अग्नि बाण को कुछ बचकाना तसल्लियों से रोकने के बजाय ह0 उमर बिन ख़त्ताब (र0) की ज़िन्दगी में खुदा के जन्नत के वादे के अटल मार्ग तलाश करें––यह हक़ की पुकार है––यह ज़मीर की मांग है––यह बुद्धि और विवेक का परामर्श है––यह उस ज़िन्दगी की खूनी चीख़ है जिसका खून मौत को देखकर किसी भी पल रगों में सदा के लिए ख़ौफ़ से जम सकता है।

ज़िन्दगी जो एक सवाल है कि "क्या हम मुसलमान हैं?"––और मौत जो इस सवाल का निर्णायक जवाब होगी।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

11

हाय वह सौदागरी !

खुदा के आख़री सन्देश के ख़िलाफ़ इब्लीस ने मक्के के घर–घर और गली–कूंचों में जुल्म और सितम की हैवानी शक्तियों को पूरी तरह लगा दिया था––आग, नफ़रत और ईर्श्या की आग––हर तरफ़ आग ही आग थी––शोलों के बिस्तर बिछाए जा रहे थे––आंखों से चिंगारियां निकल रही थीं और ज़बानों से अग्नि बांणों की बौछार हो रही थी। दहशत और अत्याचार के इस जंगल में ईमान वाले अपना सब कुछ न्यौछावर करके ईमान की सुरक्षा कर रहे थे––और अब असहनीय हालात में हब्शे की ओर प्रस्थान का समय आया तो जो लोग अपने ईमान व यक़ीन को सीने से लगाये हुये अपना सब कुछ बलिदान करके मक्के से हब्शे की तरफ़ चल खड़े हुए, उनमें ह0 उस्मान (र0) और उनकी पत्नी ह0 रुक़य्या (र0) शामिल थीं––ह0 इब्राहीम अ0 के बाद यह पहला इन्सानी जोड़ा था जिसने खुदा के नाम पर वतन की कुर्बानी पेश की थी –मक्के में इस्लाम की कामयाबी की ग़लत सूचना पर जो लोग एक बार फिर मक्का वापस आए, उनमें ह0 उस्मान (र0) भी थे। लेंकिन जैसे ही यह पता चला कि ख़बर गलत है उन्होंने फिर उस वतन से मुंह फेर लिया जहां उनके जिस्म के लिए तो जगह थी, मगर उनके दीन के लिए कोई जगह नहीं थी।

हब्शे में खुदा का नाम बुलन्द करने के बाद यह कारवां मदीने की तरफ़ हिजरत करता हुआ खुदा के रसूल (स0) से जा मिला। अभी इन विस्थापित सत्यमार्ग की विपत्ति में फंसने वालों के पैरों के छाले मिटे भी न थे कि बदर के मोर्चे पर कुफ़्र और इस्लाम के पहले संग्राम ने आवाज़ दी –यह वह दौर था जब हक़ के रास्ते के कष्ट झेलने के बाद ह0 रुकय्या (र0) बीमारी के बिस्तर पर करवटें बदल रही थीं–– ह0 उस्मान (र0) चाहते थे कि वह इस संग्राम में निर्भय होकर कूद पड़ें मगर खुदा के रसूल (स0) ने उनको बीमार पत्नी की सेवा पर मामूर कर दिया। इस तरह ह0 उस्माने ग़नी (र0) को एक के बदले दो

जिहाद करने पड़े––उनका शरीर राहे–हक़ में साथ देने वाली जीवन संगिनी के साथ था, मगर उनकी रूह बदर के मैदान में खुदा के रसूल (स0) के साथ–साथ चल रही थी। इसी का नतीजा था कि जब बदर की विजय के बाद माले ग़नीमत बांटा गया तो खुदा के रसूल (स0) ने ह0 उस्माने ग़नी (र0) का हिस्सा भी लगाया। धन–सम्पत्ति के न जाने कितने ढेर उन्होंने अपने दामन में आते हुये देखे थे––मगर यह माल!––यह तो चीज़ ही कुछ और थी।––इसमें नज़रों को चकित करने वाली चमक न थी, मगर रूह और दिल की हवेलियों को जगमग कर देने वाले नूर का सैलाब इसके अन्दर से उबल रहा था––यह एलान था मानो इस गौरवान्वित कर देने वाली हक़ीक़त का कि ह0 उस्माने ग़नी (र0) भी बदर के सहाबियों में से हैं–उन्होंने भी अपने हृदय और आत्मा के साथ हक़ और बातिल के इस पहले क़िताल (सशस्त्र जिहाद) में दिल और जिगर की गहराई से हिस्सा लिया है––लेकिन अभी वह खुदा के दिये हुये तोहफ़े के धन्यवाद की परीक्षा दे ही रहे थे कि सब्र और दुढ़ निश्चय की एक और कड़ी परीक्षा उनकी आख़रत की यात्रा के एक नये सामान के तौर पर सामने आ गई––वही बीवी जिसने उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर सत्यमार्ग के उतार–चढ़ाव में देश–विदेश की ठोकरें खाई थीं–मुसीबतों के घाव हंस–हंस कर अपने पवित्र सीने पर सहे थे ––हां वही जीवन साथी जिसकी रगों में खुदा के आख़री अति प्रिय रसूल (स0) का पावन रक्त संचालित था, जन्नत के लिये जाने को थीं।–– एक लम्बा सफ़र जिसमें उन्हें अकेले ही जाना था––उस्माने ग़नी (र0) उनके वफ़ादार शौहर भी इसमें उनके साथ नहीं जा सकते थे। वह पत्नी जिसने क़दम–क़दम पर उनका साथ दिया था, अब उसको वह अश्कों में डूबी आंखों और लरज़ते दिल के साथ "खुदा हाफ़िज़" कह रहे थे।

ह0 रुकय्या (र0) को सुपुर्दे ख़ाक करने के बाद जब वह एक तरफ़ ऐसे क़ीमती रिश्ते से वंचित होने पर सजल नयन हो रहे थे, तो दूसरी तरफ आंहज़रत (स0) से दामादी के पवित्र रिश्ते का अन्त उनके दिल व जिगर को लहू–लहू कर रहा था लेकिन इस जीवन संघर्ष में भी उन्हें खुदा ने एक ऐसे ईनाम से नवाज़ा जो उनके सिवा किसी भी दूसरे सहाबिए रसूल (स0) के हाथ न आ सका था––हुजूर ने उनके निकाह में अपनी दूसरी साहबज़ादी ह0 उम्मे कुलसूम (र0) को पेश करके ह0 उस्माने ग़नी (र0) को उस्मान –जुन–नूरैन की एतिहासिक उपाधि से पुरस्कृत किया––लेकिन यह नेमत भी शुक्र का इम्तेहान बनकर आई और बहुत जल्द सब्र की परीक्षा बनकर चली गई।

जल्द ही एक बार फिर उनके दिल पर ठीक उसी जगह नया घाव लगा जहां ह0 रुकय्या (र0) की मौत से इससे पहले लग चुका था। दीखने में वह दो "नूर" वाले ह0 उस्मान (र0) थे मगर भीतर में परीक्षा और विपत्ति के दो घाव, चाँद और सूरज की तरह आमने–सामने खड़े हो गये थे––शायद यही थे वे घाव जिनके नतीजे में दुनिया की मुहब्बत की तमाम जड़ें कट कर रह गईं––दुनिया और उसका समस्त माया जाल उनकी नज़रों में ठीकरों का ढेर बन गए और इस संसार में सबसे अच्छी जगह उनके बदले कब्रिस्तान ने ले ली, जहां जाना और कब्रों की बन्द खिड़कियों से आख़रत के उस पार झांकते रहना उनके मन की शान्ति का सबसे बड़ा साधन बन गया––वहां उनके दिल पर आने वाले अनन्त दिव्य वास्तविकताओं के साए लहराने लगते और जीवन–मृत्यु और परलोक के रहस्य बेपर्दा होकर उनके ईमान में आध्यात्म का अनमिट रस घोलने लगते थे––। किसी ने उनसे जब क़ब्रिस्तानों से इस ख़ास लगाव की वजह मालूम करनी चाही तो उसके जवाब में उन्होंने ऐसा इशारा किया जिसकी व्याख्या के लिये दफ़्तर भी क़ाफी न हों––उन्होंने कहा :

"मुर्दों में मुझे दो ऐसी खूबियाँ नज़र आती हैं जो बहुत कम ज़िन्दों में दीखती हैं–– एक तो यह कि मैं जब तक उनके पास बैठा रहता हूँ वह एक भी फ़ालतू बात मुझसे नहीं करते। दूसरी यह कि जब मैं उनके पास से उठकर चला जाता हूं तो पीठ पीछे मुझे बुरा नहीं कहते।"

जब रसूले खुदा (स0) हिजरत करके मदीना तशरीफ़ लाये तो मीठे पानी की आप (स0) को और आपके सहाबियों को बड़ी कठिनाई थी। यहां बस एक ही मीठा कुँआ "रोमा" था जो एक यहूदी के क़ब्ज़े में था और वह मनमाने दाम में उसका पानी बेचता था। एक दिन ह0 उस्मान (र0) ने यह सुना कि अल्लाह के रसूल (स0) इन विकट परिस्थितियों से परेशान होकर यह फ़रमा रहे हैं।

"जो शख़्स इस कुँए को ख़रीदकर इसको खुदा की राह मे समर्पित कर दे, उसके लिये ख़ुदा की जन्नत है।"

ह0 उस्मान (र0) दुनिया की दौलत को लिये हुये आगे बढ़े और इस आवाज़ पर दोनों हाथों से उसको लुटा दिया––कुँआ ख़रीदा और खुदा के हवाले कर दिया।

एक बार फिर ऐसी ही आवाज़ उसके कानों में पहुंची और वह उस पर ध्यानमग्न हो गए––यह मस्जिदे नबवी से सटी हुई ज़मीन को ख़रीद कर मस्जिद के विस्तार का मामला था।

जो शख़्स इस ज़मीन को ख़रीद कर इसे मेरी मस्जिद में शामिल कर दे उसको खुदा की जन्नत मिले"––आँहज़रत (स0) ने आम एलान फ़रमाया––दूसरे ही क्षण ह0 उस्मान (र0) फिर मैदान में नज़र आए, ज़मीन को ख़रीदा और उसे खुदा के घर में मिला दिया।

तबूक के ग़ज़वे में ह0 उस्मान (र0) के दान और पुण्य की भावना देखने योग्य थी––यही था वह समय जब वक़्त के पाखण्डी, लोगों को आर्थिक तंगी की सोच में धकेल कर आख़रत के अन्देशों से ख़ाली कर देने की आवाज़ बुलन्द कर रहे थे––दौलत की क़ीमत समझाई जा रही थी ––खेतों की सुरक्षा के महत्व पर बल दिया जा रहा था। इसी आत्म प्रशंसा और सांसारिक मोह के शोर गुल में उन्होंने एक बार फिर अल्लाह के रसूल (स0) की यह दर्द में डूबी आवाज़ सुनी। "जो शख़्स राहे खुदा के इस लश्कर की युद्ध सामग्री पूरी कर दे, उसको जन्नत मिलेगी।" या रसूलुल्लाह (स0)! ह0 उस्मान ग़नी (र0) पुकार उठे––"मैं सौ ऊंट पेश करता हूँ।" खुदा के रसूल (स0) ने एक बार फिर उसी आवाज़ के माध्यम से खुदा के बन्दों को और ज़्यादा दान पर उभारा। "या रसुलुल्लाह (स0)!" ह0 उस्माने ग़नी (र0) ने फिर बेताबी से जवाब दिया––"मैं तीन सौ ऊंट भेंट करता हूं।"

चौथी बार फिर खुदा के रसूल (स0) ने मोमिनों की दान शीलता और त्याग के जज़्बे को उसी शैली में आवाज़ दी––यह आवाज़ सुनते ही ह0 उस्मान ग़नी (र0) वहां से तेज़ी से उठे और घर में दाख़िल हुए––घर में एक हज़ार अशरफ़ियाँ नज़रों के सामने थीं, उन सबको उन्होंने दामन में समेटते हुये मस्जिदे नबवी का रुख़ किया और यह सारी पूँजी हुजूर (स0) के पवित्र क़दमों में ला डाली। आँहज़रत (स0) उस वक़्त मिम्बर पर खड़े हुए थे। इसके बाद आप बैठ गए। अत्यन्त आनन्दित होने से आप (स0) का नूरानी चेहरा गुलाबी हो गया। दानशीलता एवं कल्याण के इस लालिमा भरे तोहफ़े को एक हाथ से दूसरे हाथ में लेते हुए फ़रमाया :

"आज के बाद––आज के बाद उस्मान (र0) चाहें कुछ करें उन्हें कोई चीज़ नुकसान नहीं पहुंचा सकती––कोई चीज़ उन्हें नुकसान नहीं पहुंचा सकती।"

ह0 उस्मान (र0) ने यह सुना तो उन्हें लगा जैसे खुदा की जन्नत सचमुच उनकी झोली में आ गई है–– उनको बदर के माले ग़नीमत (ऐसी युद्ध सामग्री जो विरोधी सैनिक हार की स्थिति में जंग के मैदान में छोड़ जाते हैं) से भी गौरव और प्रसन्नता की दौलत मिली थी––उनको हुजूर (स0) की दो बेटियों से निकाह का सौभाग्य मिला था। उन्हें हुजूर (स0) की यह मनभावन वाणी भी कभी सुनाई दी थी कि अगर मेरे दूसरी बेटिया होतीं तो मैं उस्मान के निकाह में उनको दिये चला जाता। लेकिन तबूक की जंग के अवसर पर आकाशवाणी के प्रतिनिधि की ज़बान से यह शुभ आवाज़ उनके लिये एक ऐसी अमिट वरदान थी जिसके एहसास से वह ख़ुशी के मारे रो दिए––और गौरव एवं हर्ष के घोर कम्पन ने उनके सारे अस्तित्व को शुक्र के सजदे में ढाल दिया। ऐसी ही रूहानी खुशी का तजुर्बा उन्हें हुदैबिया के अवसर पर हुआ था। जब माल के बजाय जान की बाज़ी लगाने के लिए मक्के में दूत का कर्तव्य निभाने की आवाज़ हुजूर (स0) के होंठों पर बुलन्द हुई थी––उस्माने ग़नी (र0) ने वहां भी खुद को इसी तरह पेश किया था––और जब उनकी शहादत की झूठी ख़बर के बाद अल्लाह के रसूल (स0) ने रिज़वान वृक्ष के साए में अल्लाह के बन्दों से सब कुछ लुटाने की शपथ ली तो अपने एक हाथ पर हुजूर (स0) ने दूसरा हाथ रखते हुए ऐलान फ़रमाया : "यह उस्मान का हाथ है––यह उसकी तरफ़ से समर्पण की ईमानी शपथ है।"––और जब शहादत की ग़लत सूचना के रद्द होने के बाद कुछ मुसलमानों ने यह विचार व्यक्त किया कि उस्मान (र0) कैसे खुशनसीब हैं कि उन्होंने काबे का तवाफ़ (परिक्रमा) कर लिया होगा–– तो खुदा के रसूल (स0) ने उस्माने ग़नी

(र0) के साथ अपने इस आशावादी विचार को व्यक्त किया कि "मुझे उनसे यह आशा नहीं कि हमारे बिना उन्होंने अकेले खुदा के घर का तवाफ़ कर लिया होगा।"

और जब ह0 उस्मान (र0) ज़िन्दा सलामत वापस आए और उनको हुजूर की इस उम्मीद का पता चला तो खुशी और गौरव से भाव विभोर होकर भर्राई हुई आवाज़ में उन्होंने लोगों को बताया कि यह खुदा की बड़ी कृपा है कि उसके रसूल (स0) ने मुझ में जो विश्वास व्यक्त किया था वह ग़लत साबित नहीं हुआ––मुझसे कहा गया था कि मैं अगर चाहूँ तो काबे का अकेले तवाफ़ कर सकता हूँ और ख़ाना–ए–काबा का सौन्दर्य मुझे अपनी ओर खींचे ले रहा था, मगर आँहज़रत (स0) के बिना अकेले यह रूहानी स्वाद लेने के विचार से ही मेरी रूह पानी–पानी हो गई और मैंने मक्कावासियों के इस प्रस्ताव को कुबूल करने से साफ़ इन्कार कर दिया।

खुदा के आख़री रसूल (स0) का ह0 उस्माने ग़नी (र0) के साथ यह आशावाद बढ़ता और फैलता ही चला गया––यहां तक कि भविष्य के हौलनाक और घोर अन्ध्यारे उपद्रवों में भी यह सकारात्मकता ह0 उस्मान (र0) की क़िस्मत का चमकता फैसला बन गई। खुदा के रसूल (स0) ने एक नक़ाबपोश शख़्स की तरफ इशारा करते हुए सहाबा (र0) से इरशाद फ़रमाया––"उपद्रवों के समय यह शख़्स हक़ पर होगा।"––लोग तेज़ी से इस गुज़रते हुए शख़्स तक पहुंचे तो देखा कि यह ह0 उस्मान (र0) ही थे––पूछा गया कि "क्या यही शख़्स?"–– और पैग़म्बर (स0) ने जवाब दिया––"हाँ हाँ यही शख़्स!"––और इस शख़्स से आप (स0) ने यह भी इरशाद फ़रमाया : "ऐ उस्मान (र0)! देखना तुम्हें एक क़मीस पहनाई जायेगी और लोग उसको उतारना चाहेंगे––लेकिन अगर तुमने उसको उतार दिया तो जन्नत की ख़ुशबू तक तुम्हें नसीब नहीं

होगी।"––और ख़िलाफ़त की क़मीस जब उनकी ज़िन्दगी की अन्तिम और सबसे बड़ी परीक्षा बनकर आई तो बड़ी से बड़ी कठिनाई और बड़े से बड़ा ख़तरा दुनिया में उस क़मीस को उस वक़्त से पहले उनके बदन से न उतार सका जब तक यह क़मीस खुद उनकी शहादत के खून से सराबोर न होकर रह गई––वह इसकी राह पर प्यास की उस पीड़ादायक मन्ज़िल से गुज़रे कि जहां उनके घिरे परिवारजन पानी की एक–एक बूँद को तरसा दिये गये। उन्होंने मकान की बुलन्दी पर से मकान का घिराव करने वालों को आवाज़ दी––"मैं ही वह हूँ जिसने हुजूर (स0) और उनके सहाबा के लिए मीठे पानी का कुँआ ख़रीद कर वक़्फ़ (धर्मार्थ समर्पित) कर दिया था और मैं ही वह हूँ कि आज मेरे घर वाले ठण्डे पानी की एक–एक बूँद को तरस रहे हैं।"

इस दयनीय पीड़ा पर तड़पती हुई कितनी ही इन्सानी रूहों ने तड़प कर कहा ––" तो फिर इन घिराव करने वालों के खिलाफ़ तलवारों के बेनियाम होने का आदेश दीजिए।" फिर––दूसरी आवाज़ बुलन्द हुई––"यहां से हट जाइए और इस पद को छोड़ दीजिए।"

और ह0 उस्मान ग़नी (र0) की रूह अतीत में आँहज़रत (स0) इस निर्देश की गूँज में डूबते हुए पुकार उठी––नहीं ––यह भी मुमकिन नहीं इस क़मीस को मैं जीते जी कैसे उतार सकता हूँ कि जिसके उतारने के माने यह हैं कि ह0 उस्मान (र0) खुद को जन्नत की खुश्बू तक से वंचित हो जाने दे।"

और इसी फ़ैसले पर अपना सब कुछ दांव पर लगाते हुए वह जिस वक़्त घर में कूदकर आने वाले क़ातिलों की तलवारों को अपने ऊपर भयावह बिजलियों की तरह कौंदता हुआ देख रहे थे तो उस वक़्त भी उन्होंने दुनिया और उसकी दौलत व सत्ता

की ओर एक नज़र भी तो न डाली––उस समय भी उनके सामने सिर्फ़ एक चीज़ थी और वह खुदा की किताब थी जिसके खुले हुये पन्नों पर नज़र जमाये वह शहादत के लहू में नहा रहे थे और उनका पावन खून कुरआन शरीफ़ की इन आयतों पर टपक रहा था––"फयस्कु फ़ी––हुमुल्लाहु व हुवस–समीउल अलीम"––(इन सबसे निपटने के लिये तेरे लिए अल्लाह काफ़ी है और वह सुनने वाला और जानने वाला है।)––कौन कह सकता है कि एक ऐसा मोमिन बन्दा मैदाने उहद से इसलिए फरार हो सकता था कि उसकी जान बच जाये, चाहे जन्नत हाथ से क्यों न निकल जाय!––उहद के मैदान में हुजूर (स0) की शहादत की ग़लत मगर बिजली बनकर गिरने वाली ख़बर सुनकर जो कुछ बीती हो जान की मुहब्बत उनको जिहाद के पथ से कदापि नहीं हटा सकती कि जिनको केवल यह ख़ौफ़ कि वह जन्नत की खुश्बू से महरूम न हो जाएँ हौलनाक कष्टों और नंगी तलवारों की छाँव में धैर्य और ईमानी समर्पण की चट्टान बना हुआ था––फ़रार की राह तो कैसी उन्होंने ही अपनी जान की सुरक्षा के लिए इतना भी गवारा न किया कि मुसलमानों की तलवारों से उन मुसलमानों का खून हो जाने दें जो षड़यन्त्रकारी ताक़तों के जाल में फंसकर उनके खूनी छींटों से कुरआन के पृष्ठों को रंगीन होता हुआ देखने वाले थे।

ह0 सिद्दीक़े अकबर (र0) के युग में जिस वक़्त उम्मत अकाल से पीड़ित हुई तो उन्होंने अपनी इस भविष्यवाणी का ऐलान किया––"आज शाम तक अल्लाह तुम्हारी परेशानी दूर कर देगा।" यह परेशानी दूर करने का सेहरा उस्माने ग़नी (र0) के सर ही बंधने वाला था, जो इन्सान से व्यापार करने के बजाय खुदा से तिजारत करने के धनी थे, जिसका पुरूस्कार आँहज़रत (स0) ने आख़रत के दर्दनाक अज़ाब से मुक्ति ठहराया है। उसी शाम उनके एक हज़ार अनाज से लदे हुए ऊँट बस्ती में दाखिल

हुए तो मदीने के व्यापारी उनकी ख़रीदारी के लिए भीड़ बनकर आए।

"तुम लोग मुल्के शाम की इस ख़रीद पर मुझे कितना लाभ दे सकते हो?" ह0 उस्मान (र0) ने ख़रीदारों से सवाल किया।

"दस रूपए पर बारह रूपए"––– व्यापारियों ने बोली लगाई।

"मुझे इससे ज़्यादा मिल रहा है।" ह0 उस्मान (र0) ने जवाब दिया।

"अच्छा दस रूपए पर पन्द्रह रूपए" तिजारत करने वाले इन्सानों ने दूसरी बोली लगाई।

"मुझे इससे भी ज़्यादा मिल रहा है।" ह0 उस्मान (र0) ने कहा।

"आख़िर वह ज़्यादा देने वाला कौन है?"––व्यापारियों ने अचरज भरा सवाल किया––"मदीने के व्यापारी तो हम ही लोग हैं।"

"मुझे एक रूपए के माल की दस रूपये क़ीमत मिल रही है।" ह0 उस्मान (र0) ने व्यापारियों की हैरत और बढ़ा दी –– "क्या तुम इसे ज़्यादा दे सकते हो?"

"जी नहीं!–––हैरत से खुले मुँह से लोगों ने जवाब दिया––"फिर तुम सब गवाह हो जाओ।" ह0 उस्मान (र0) ने राज़ खोलते हुए फ़रमाया––"मैंने यह सब अनाज खुदा की राह में दान कर दिया।"

और इसी राज़ को ह0 अबबास (र0) के योग्य पुत्र ह0 अब्दुल्लाह(र0) ने सपने में देखा कि हुजूर (स0) एक सफ़ेद तुर्की घोड़े पर सवार हैं और नूरानी वस्त्र धारण किये हुए हैं

और कहीं जाने की जल्दी है––उन्होंने कहा––"या रसूलुल्लाह (स0)! आपको कहां जाने की जल्दी है?––मुझे तो आपके दर्शन की बेहद अभिलाषा थी।" जवाब मिला––"इस वक़्त मुझे जाने की जल्दी इसलिए है कि उस्मान (र0) ने एक हज़ार ऊँट अनाज के दान किये हैं जिनको अल्लाह तआला ने क़ुबूल फ़रमा लिया है और इसके बदले जन्नत की एक हूर से उनका निकाह हो रहा है–– मुझे इस शादी समारोह में शरीक होना है।"

यह थे वह मुसलमान जिन्होंने खुदा से जन्नत की ख़रीदारी का संकल्प किया और इस संकल्प को जान व माल देकर पूरा किया–– हमने भी ठीक यही वादा अपने रब से किया है और हुजूर (स0) का नाम लेकर किया है–– लेकिन हमारी तमन्ना यह है कि हमारी ज़िन्दगी की पूरी ऊर्जा––सभी शक्तियां और संसाधन इस मिटने वाली दुनिया की ख़रीदारी में खप जाएं और खुदा अपनी जन्नत मुफ़्त में हमारे दामन में डाल दे–– क्या कभी भी हमें इस बुरे व्यवहार पर खुदा के सामने शर्म आई है?––क्या कभी हमें इस लज्जा के भाव नें जीवन में एक बार––एक घड़ी के लिए भी रुलाया है? क्या हम मुसलमान हैं?––आह! क्या वास्तव में हम मुसलमान हैं?

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

12

यह उम्र –यह इरादे !

छठी सदी ईसवी की एक अन्धयारी रात में जब रिसालत के अन्तिम सूर्य का उदय हुआ तो अली इब्ने अबी तालिब (र0) केवल दस साल के थे। इस काली ऐतिहासिक रात में इस दस साल के बच्चे ने रिसालत के सूर्य का सबसे पहला सौन्दर्य से परिपूर्ण अद्भुत मन्ज़र देखा। एक नया मानवीय गठजोड़, जीव और ब्रहम्माण्ड के इकलौते खुदा के अनदेखे क़दमों पर उस महामानव और खुद उसकी जीवन संगिनी ह0 ख़दीजा (र0) के जुड़वाँ सजदे के रूप में उदय हो रहा है। जिस खुदा के एकत्व से कटकर ही इन्सानी एकता के पड़खच्चे उड़ रहे थे, उसी के

आस्ताने पर खुदा के नाम पर जुड़ा हुआ एक मानव जोड़ा वहदानियत (एकेश्वरवाद) का व्यावहारिक चित्र पेश कर रहा था। कितना निःस्वार्थ और सच्चा था वह इन्सान जिसके अद्वैत भाव पर उसके खुलूस और सच्चाई की पहली गवाह खुद उसकी बीवी थी––घर की भेदी थी।

अली इब्ने अबी तालिब (र0) ने अपने चचेरे भाई ह0 मुहम्मद (स0) और ह0 ख़दीजा (र0) के इस इकलौते खुदा को सजदा करने के बाद बेताबी से सवाल किया––"यह क्या है जो मैं देख रहा हूँ?" जवाब मिला––"यही है इन्सानियत की खोई हुई जन्नत जिसको गुम करके ही यह दुनिया नरक बन के रह गई है–– ऐ अली! यही था हमारे बाप इब्राहीम (अ0) का असली दीन"–– कितना हसीन था यह दीन! अली की मासूम रूह पुकार उठी––"आह! लेकिन अब वही दीन! क्या से क्या होकर रह गया है.....।"

और एक दिन जब यह बच्चा भी इन दोनों के कृतज्ञता के सजदे में शामिल हो गया था, उसके पिता अबू तालिब आ पहुंचे। फूट और दरिन्दगी की भीषण आंधियों में यह तीन खूबसूरत दिये कैसे रौशन हैं।––यह अनायास प्रश्न इस सजदे के बाद खुद अबू तालिब के होंठों पर थरथरा रहा था। फिर वही रोमांचक जवाब!–– ह0 मुहम्मद (स0) की दर्द भरी आवाज़ प्रसारित होती हुई सुनी गई–– " ऐ चचा, यह इब्राहीम (अ0) व इस्माईल (अ0) का अस्ल दीन है, जो खोया तो सब कुछ खोकर रह गया––" क्या इस खोई हुई जन्नत में आप दाख़िल नहीं होंगे? क्या पुरखों का यह ख़ज़ाना आप स्वीकार नहीं करेंगे. .....?" और अबू तालिब का पूरा अस्तित्व उलझे हुये जज़्बात की चक्की में पिस्ता हुआ महसूस हुआ। उनका दिल सच्चाई के मन्ज़र को प्रमाणित कर रहा था, मगर दिमाग़!..... आह! उसके सामने नफ़ा–नुक़सान, खुदा और इन्सान के दो पहलू

सामने आकर टकराने लगे––वह अभी इन्सान से टकराने और नई दुनिया बनाने के लिए पुराने संसार को ढाहने के लिए तैयार न हो सके थे। उन्होंने कहा––

"मेरे भतीजे, मैं दिल से तुम्हारे साथ हूँ––और ऐ अली, तुम मुहम्मद (स0) का साथ दो और उसके साथ–साथ चलो। मुहम्मद (स0) किसी को ग़लत रास्ते पर ले जाने वाला इन्सान नहीं है–– लेकिन मैं इस बात को किस तरह से कहूँ! अभी यह ताक़त मुझमें नहीं है।" और इस तरह अली (र0) जिस सवाल का जवाब अपने बाप की ज़बान से ढूँढ रहे थे, वह उससे पूछे बिना स्वयं खुदा ने उनके पिता की वचन और मन दोनों से दिला दिया था। उन्हें खूब पता चल गया था कि खुदा की ओर वापस होते हुए उन्हें खुद अपने ख़ानदानी खून की इस कमज़ोरी से लड़ना पड़ेगा––ज़बान और दिल के बीच दूध और खून की पुशतैनी चुभन अपने खून और आंसुओं से पाटनी होगी।

यही था वह पहला बलिदान का संकल्प, पहला हक़ की शहादत का जज़्बा जिसका नाम खुदा के यहाँ "असुदल्लाहियत" (अल्लाह का शेर होने का गौरव) है–– "जुलफ़क़ारियत"(जुल्फ़िक़ार नामक तलवार जो नबी (स0) नं जंगे बदर के मौक़े पर ह0 अली (र0) को प्रदान की थी–– उस तलवार को चलाने का सौभाग्य) है––शेरे खुदा, वह इसी बात पर खुदा के यहां आसमानों में कहलाए गए होंगे, उसी दिन उन्हें "जुल्फिक़ार" की उपाधि मिली होगी ––अल्लाह के दिये हुए इसी सम्मान का प्रदर्शन, फिर रसूलुल्लाह (स0) के ज़रिए मिले हुए ख़िताब और तलवार के रूप में यहूदियत से जंग के अवसर पर आगे चलकर हुआ।

कितनी ज़बरदस्त ताक़त थी जो इस काले युग में ह0 मुहम्मद (स0), ह0 ख़दीजा (र0) और ह0 अली (र0) की तीन रूहों की एकेश्वरवादी नमाज़ में नज़र आती थी!! यह बात ह0 अब्दुल्लाह इब्ने मसूद (र0) से पूछिए––जिन्होंने इसका दृश्य उस समय देखा था? जब खुशबुओं का व्यापार करने वाले अपने चचा के साथ मक्के में आए हुए थे–– और पहली बार उन्हें ह0 मुहम्मद (स0) के दर्शन का सौभाग्य मिला था। उनकी क़ौम के यह व्यापारी ह0 अब्बास (र0) से ज़म–ज़म के कुएँ पर कारोबारी वार्ता कर रहे थे कि अचानक देखा गया कि सफ़ा पर्वत की ओर से एक सुर्ख़–सफ़ेद इन्सान जिसके दांतों में मोतियों की सी चमक थी, काली दाढ़ी और सफ़ेद लिबास के साथ दाख़िल हुआ। उसकी दाहिनी ओर एक लड़का आकर खड़ा हो गया और उसके पीछे एक औरत जो पवित्रता की ज़िन्दा तस्वीर नज़र आती थी और यह तीनों आत्माएँ "हजरे असवद" को चूमने और काबे की परिक्रमा के बाद बुत के बजाए अल्लाह के सामने सजदे में गिर गईं।

खुश्बू के कारोबारियों ने इस "सजदए तौहीद" और सामूहिक नमाज़ की खुश्बू का झोंका महसूस किया तो झूम कर रह गए।

"यह क्या हो रहा है.....?" हैरत और आस्था में डूबी आवाज़ों ने ह0 अब्बास (र0) से सवाल किया।

"वह चौहदवीं के चाँद की तरह जगमगाता हुआ चेहरा मेरा भतीजा मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (र0) है––वह दाहिनी ओर खड़ा हुआ मेरा दूसरा भतीजा अली इब्ने अबी तालिब (र0) है––और वह पारसा महिला मुहम्मद (स0) की पत्नी ख़दीजा (र0) हैं"––ह0 अब्बास (र0) ने कहा।

"और यह 360 बुतों के पुजारियों के बीच एक खुदा और एक ही खून की दोहरी पुकार लगाने वाला दीन है जिसको उसका पैग़म्बर मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (स0) खोई हुई "मिल्लते इब्राहीमी" के नाम से पेश कर रहा है। इस वक़्त इस दीन में यही तीन रूहें शामिल हैं और बस!"

सवाल करने वाले चेहरों पर भय और आशा के मिले–जुले भाव दिखाई दिये और यह तारीख़ी आवाज़ एक साथ सबके होंठों पर पहला क्रान्तिकारी धमाका बनकर बुलन्द हुई––"नहीं–नहीं, तीन रूहें नहीं हैं यह! यह तो पूरी दुनिया में ज़बरदस्त इन्क़लाब की आमद–आमद है.....यह तो एक नई दुनिया के नए आसमान व ज़मीन हैं––नए सूरज–चाँद सितारे हैं। यह लोग!!. ..... या आज फिर इन तीनों रूहों से जुड़े हुए करोड़ों दिलों में भी दो–तीन दिल इस जल और थल में फ़साद की मारी हुई दुनिया को बदलने के लिए एक नई दुनिया और नए इन्क़ेलाब का धमाका नहीं सुना सकते?"

हो सकता है यह कठिन काम खुदा बड़े–बड़ों से न ले और कुछ कमज़ोर व शक्तिहीन लोग कुबूल कर लिए जाएं। यह आवाज़ भी अली (र0) के हृदय की धड़कनों में साफ़ सुनाई दे रही है––आह यह आवाज़!!

मक्के में तीन साल का गुप्त दीनी प्रचार का दौर ख़त्म हो चुका था और सफ़ा पहाड़ी से पहली खुल्लम–खुल्ला तब्लीग़ का सूर फूंका जा चुका था कि खुदा के रसूल (स0) ने ह0 अली (र0) से कहा–––रिज़्क (भोजन) के नाम पर सारे इन्सान जुड़ जाते हैं। ऐ अली (र0), तुम कुरैश की दावत का इन्तेज़ाम करो ताकि इससे आगे रज़्ज़ाक़ (रिज़्क़ देने वाले) के नाम पर भी एकता और एक खुदा की इबादत की दर्द भरी पुकार लगाई जा सके।"

और फिर ह0 अली (र0) द्वारा आयोजित सजाए गए दावती दस्तरख़ान पर जब कुरैश की प्रतिष्ठित और सरफिरी भीड़ शारीरिक भोजन के मज़े ले चुकी तो आध्यात्मिक दावत की आवाज़ बुलन्द करने वाले ह0 मुहम्मद (स0) खड़े हो गए। खाने खा–खा कर अपने खिलाने वाले को भूलने वालों के सामने वह अद्भुत इन्सानी चेहरा दर्दे दिल की तस्वीर बना हुआ था, जिसकी असली ग़िज़ा (भोजन सामग्री) इन्सानियत का ग़म था। ग़म खाने और आंसू पीने वाले इस इन्सान (स0) की आवाज़ बुलन्द हुई तो दरो–दीवार तक उसके साथ रो पड़े––"ऐ इन्सानो! मेरे पास एक सबसे बहुमूल्य चीज़ और भी है, जो अगर तुम्हारे हाथ आ जाए तो सारी दुनिया और उसकी दौलत तुम्हारे क़दम चूम लेगी.....।"

"अच्छा!" महफ़िल में हाज़िर लोग यह सुनकर चौंक उठे––यह उस हस्ती की आवाज़ थी जिसकी सच्चाई और ईमानदारी की चालीस साल से पूरा मक्का क़सम खाता आया था। "ऐसी क़ीमती चीज़!–– इसे तो हम सब क़ुबूल करेंगे, ऐ "अल अमीन" ऐ "अल–सादिक़" बताओ वह क्या है और कहां है?"

––"वह यह अन्न खिलाने वाला अन्नदाता है––अल्लाह है"––दीन का आह्वानकर्ता पुकार उठा––"वही––अकेला "माबूद" (पूज्य) हो सकता है, जो खिलाता है, खाता नहीं, सुलाता है––सोता नहीं, मौत देता है––मरता नहीं। कौन इस पुकार में मेरा साथ देता है––कौन अन्न देने वाले अन्नदाता को भी स्वीकार करता है––ऐ लोगो!"

सारी महफ़िल पर मौत की सी ख़ामोशी छा गई––ऐसा लगा कि अन्न–जल से जीने वाले, अन्नदाता का नाम सुनते ही मर गए हैं। सिर्फ़ एक दिल था जो इस दर्दनाक परिस्थिति पर

तड़प उठा––यह बारह–तेरह साल के लड़के ह0 अली (र0) का ही दिल था।

"मैं आपका साथ दूंगा, मैं!!" मानवता की इस मौत पर गुहार लगाती हुई तन्हा आवाज़ गूंजी––"अगरचे मेरी आंखें दुखती हैं और मेरी टांगे पतली–पतली हैं।"

इस दुर्बल काया को अपने सीने से लगा लेने के बाद पुकारने वाले ने दो बार, तीन बार वही आवाज़ बुलन्द की –– लेकिन इसके जवाब के लिए इस निर्बल और शक्तिहीन के सिवा कोई दूसरा जीवित होने का प्रमाण न दे सका।

कल ह0 अली (र0) की दुखती हुई आंखों में ––पतली–पतली टांगों में खुदा की ताक़त उस वक़्त आ गई थी, जब वह अपनी "मैं" की विकृतियों से आज़ाद हो गए थे। आह ! किस क़दर आज़ाद!!––अगर कल यह मुमकिन था कि खुदा और खून की दोहरी एकता की पुकार बुलन्द करने के लिए अनुभवी बुढ़ापों और फ़ौलादी जवानियों के बजाय एक कमज़ोर और शक्तिहीन को चयनित और कुबूल किया जाए और फिर उसकी इन्हीं दुखती हुई आंखों से अन्धों के लिए दृष्टि और मुर्दों के लिए ज़िन्दगी बांटी जाए और उसकी पतली–पतली टांगों की ठोकरों से यहूदियत के मज़बूत फ़ौलादी क़िले ध्वस्त कर दिये जाएं। अगर कल यह मुमकिन था तो क्या आज भी मुमकिन है?

आज "फ़िरक़ाबन्दी" और "मैं" की बारह शताब्दियों की आंधी, ह0 मुहम्मद (स0) और हज़रत अली (र0) के दिल की पीड़ा से जलाए हुए चराग़ों को इस हद तक बुझा चुकी कि इन दोनों से एक जैसा सम्बन्ध परखने वाली "तरीक़त" व "शरीयत" में टकराव हो रहा है और "शरीयत" व "सुन्नियत" सदियों से परस्पर उलझ रहे हैं और "सहाबियत" व "अहले बैत" का अस्ल

"साहब" (स0) व सरबराह (स0) एक बार फिर वैसी ही फ़िज़ाओं में रुहानी पुकार लगा रहा है। "खुदा और खून की एकता की पुकार बुलन्द करने में कौन मेरा साथ देता है।" पवित्र रिश्तों के सरों पर "खुदा" दो नहीं एक ही तो है।

कहां हैं वह लोग जो आज "रसूले रहमत" व एकता की रुहानी पुकार का एक बार फिर वही जवाब दे सकें जो "शेरे खुदा" बन जाने वाले इस कमज़ोर और अशक्त अली (र0) ने दिया था। आज क़ौमें हमें हदीस की भविष्यवाणी के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीय चौराहों पर इस तरह खा रही है जैसे भूखे दस्तरख़ान पर खानों पर झपटते नज़र आते हैं और इन आदमख़ोरों से दूर भागने की ताक़त भी हम में नहीं है। कल इस्लाम कुफ़्र की दुर्दशा पर रो सकता था मगर आज कुफ़्र हमारे इस्लाम पर हंस रहा है––क्या हम मुसलमान हैं?

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

अब तलक याद हैं क़ौमों को हिकायत उनकी।

नक़्श है सफ़–हए–हस्ती पे सदाक़त उनकी।।

13

अमीनुल उम्मत
(उम्मत की धरोहर का संरक्षक)

ह0 अबू उबैदा बिन जर्राह (र0) ने खुदा के महबूब दीन की कैसी–कैसी ख़िदमत की। इस्लाम को उन्होंने उस वक़्त सीने से लगया था जब इस्लाम की ओर बढ़ने का अभिप्राय सारी दुनिया से कट जाने का था। ख़तरे तूफ़ानी रफ्तार से आगे बढ़

रहे थे और इस्लाम की तरफ़ क़दम बढ़ाने वालों को पीछे धकेल देने की बेपनाह कोशिश हो रही थी। मगर यह बढ़ते क़दम किसी तरह रुकते नहीं थे। लोग थे कि आख़रत का घर बसाने के लिए अपने सांसारिक जीवन की ईंट से ईंट बजा देने का साहस दिखा रहे थे। इसी शौक़ के कारवाँ में ह0 अबू उबैदा (र0) भी शामिल थे जो अपने दोनों हाथों से दुनिया को हटा–हटा कर खुदा की दिशा में जाने वाली यात्रा में व्यस्त थे। हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) में घमासान का रण पड़ रहा था और हक़ वाले खून के सैलाब में ईमान की नाव खे रहे थे। जिस समय बदर की जंग में हक़ वा बातिल के बीच पहले हथियार बन्द संघर्ष का एतिहासिक बिगुल बजा और ह0 अबू उबैदा (र0) जिहाद और कठिन मार्ग के मोर्चे पर सर से कफ़न बांधे हुए आए तो देखा कि उनके मुक़ाबिल जो शख़्स नंगी तलवार खींचे हुए सामने आ खड़ा हुआ है, वह खुद उनका "बाप" है। काफ़िर (ईश्वर का अवज्ञाकारी) बाप का खून यद्यपि मोमिन बेटे के लिए सफ़ेद हो चुका था मगर मोमिन बेटे की नज़र में वह बहरहाल इसका पिता था। बाप की कोशिश थी कि खुदा के आगे झुके हुए बेटे का सर उतारे, मगर बेटे की आरजू थी कि मेरी तलवार बाप की जीवन लीला को कुफ़्र पर समाप्त करने का कारण न बने तो अच्छा है। इस "मोमिनाना" एहसास से वह आक्रमणकारी को बचने का अवसर देते और पहलू बचाते रहे। मगर जैसे ही उनको लगा कि हक़ीक़त में यह एक बाप का बेटे पर हमला नहीं बल्कि एक बाग़ी बन्दे का हमला अपने सच्चे खुदा पर है तो अनायास ह0 उबैदा (र0) की आंखों में खून उतर आया––फिर बिजली की तरह लपक कर उन्होंने एक ही निर्णायक वार में अपने खुदा के लिए अपने पिता की गरदन साफ़ कर दी।

उहद की जंग में ह0 अबू उबैदा (र0) ने जब यह देखा कि कुफ़्र और शिर्क के दरिन्दों ने अल्लाह के रसूल (स0) को घायल कर डाला है और इन भीषण हमलों के नतीजे में खुद की लौह कड़ियां रिसाल के गालों में घुस कर रह गई हैं तो हुजूर की यह हालत उनसे एक पल के लिए भी न देखी गई––वह बेचैनी के आलम में आगे बढ़े और अपने दांतों से इन कड़ियों को बाहर खींचकर लाना चाहा––यह कड़ियां धीरे–धीरे बाहर निकल रही थीं और साथ ही साथ इस कठिन प्रयास में ह0 अबू उबैदा (र0) के दांत टूट रहे थे और मुँह से खून की धारा बह रही थी। लेकिन दांतों के पाश–पाश होने का जानलेवा दर्द इस खुशी के एहसास में खोकर रह गया कि हुजूर (स0) के कोमल गाल इन फ़ौलादी कड़ियों से छुटकारा पा चुके हैं।

यूं तो वह हर उस जगह डंटे हुए देखे गए जहां कहीं और जब कभी अंधेरों ने उजालों पर चढ़ाई की और झूठ ने सच्चाई को ध्वस्त कर देना चाहा। लेकिन हुजूर (स0) की वफ़ात के फ़ौरन ही बाद सक़ीफ़ा बनी साइदा में जब पहले ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) के चयन की समस्या उठी तो वह समय था जहां अल्लाह वालों को अल्लाह के लिए स्वयं अपने अस्तित्व से जंग–खूंरेज़ जंग करना थी। यह वह कोमल क्षण थे जब मुनाफ़िक़ीन (पाखण्डी) हुजूर (स0) के साथ इस्लाम को भी सदा के लिए दफ़न करने की आख़री चाल खेल रहे थे। जहां शैतानी साज़िश यह थी कि बलिदान के दीवानों को अधिकार प्राप्ति के मार्ग से विचलित कर दिया जाए और इस तरह ईमानी भाईचारे की इस सदाबहार खेती को जलाकर राख कर दिया जाए जिसको तेईस साल तक खुदा के रसूल (स0) ने अपने खून और आंसुओं से सींचा था। आज इस्लाम की हमेशा मदद करने वाले "अन्सार" इस्लाम से अपने लिए ख़िलाफ़त का हक़ मांग रहे थे और "मुहाजिरीन" का यह दावा था कि इसका हक़ उन्हें

मिलना चाहिए जिन्होंने इस्लाम के लिए अपना घर–बार और सब कुछ सबसे पहले छोड़ा था। यहां अधिकारों की बहस एक बार फिर त्याग और बलिदान को आवाज़ दे रही थी, मगर भावनाओं के भारी शोर में कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी। समझ में न आता था कि अधिकारों का यह तूफ़ानी विवाद क्या अब किसी तरह भी अन्तिम त्याग की ओर मोड़ा जा सकेगा या नहीं? ठीक उस वक़्त एक दर्द भरी आवाज़ आई––आख़रत के भय और आशा से कांपती हुई आवाज़––बलिदान के लिए बेताब चीख!––साक्षात् शोभ––पीड़ा में डूबी हुई! खुदा के लिए सब कुछ तज देने की आवाज़?

"ऐ अन्सार! तुम वह हो जिन्होंने सबसे पहले इस्लाम का साथ दिया बस ऐसा न हो कि तुम्हारी वजह से इस्लाम में सबसे पहली जमाअती फूट पड़े।––"

यह ह0 अबू उबैदा (र0) की आवाज़ थी जहां लोगों के कानों में खुद अपने दिलों की आवाज़ न आ रही थी वहां यह दर्द में डूबी वाणी काम कर गई, दिल से निकली हुई पुकार ने अल्लाह वालों के दिल हिला दिये––मतभेदों के खूनी बादल धूल की तरह साफ़ हो गए। जो अन्सार अभी–अभी अपना हक़ मांग रहे थे उनके बीच से त्याग के लिए बेताब एक बिजली सी चमकती हुई निकली––यह ह0 ज़ैद बिन साबित (र0) थे जो तड़प कर आगे बढ़े और एक क्षण में दिल और ज़ुबान की इस ख़ौफ़नाक बात का अन्त कर दिया।

आंहज़रत (स0) मुहाजिर (विस्थापित) थे इसलिए ख़लीफ़ा भी मुहाजिर होगा और हम जिस तरह आप (स0) के अन्सार मददगार थे उसी तरह आप (स0) के ख़लीफ़ा के अन्सार रहेंगे।"

"देखो!" इस महज़ भावुक मोड़ पर ह0 अबू–बकर सिद्दीक़ (र0) ने खड़े होकर न्यायसंगत एलान किया––"यह उमर इब्ने ख़त्ताब (र0) हैं जिनके बारे में ऑहज़रत (स0) ने इरशाद फ़रमाया था कि इनकी बरकत (शुभ आगमन) से खुदा ने इस्लाम को चार चाँद लगाए और यह अबू उबैदा बिन अल–जर्राह (र0) हैं, जिनको रसूले खुदा (स0) के बड़े दरबार से "अमीनुल उम्मत" (उम्मत की धरोहर के संरक्षक) की उपाधि मिली। आओ और इनमें से जिसके हाथ पर चाहो बैअत (शपथ ग्रहण) करो।"

यह एलान इस बात का प्रमाण था कि इस्लाम का सबसे बड़ा समर्पित सेवक इस्लाम के लिए सबसे बड़ा त्याग–बलिदान कर रहा है और सच्चाई को सबसे पहले कुबूल करने वाला, सबसे पहले अपने सेवा के अधिकार को इस तरह से सौंप रहा है कि वह जी–जान से खुद को दूसरों के आधीन करने को तैयार है––साथ यह एलान इस बात का शानदार अवसर था कि ह0 उमर (र0) हों या ह0 अबू उबैदा (र0) दोनों अपने–अपने योगदान के बदले ख़िलाफ़त की उपाधि प्राप्त कर सकते हैं। मगर वहां दुनिया ने यह मन्ज़र देखा कि ख़िलाफ़त के लिए नामित होते ही ह0 उमर (र0) बेताब होकर उठे और ह0 अबू–बकर (र0) के हाथ पर बैअत करते हुए यह एलान कियाः

"आह! ऐ गुफ़ा के साथी! आपके होते हुए और कौन दूसरा इसका भागीदार हो सकता है–––?"

उधर ह0 अबू उबैदा (र0) का यह हाल हुआ कि भीड़ को चीरते हुए यह कहते हुए तीर की तरह झपट रहे थे।

"देखो पहले मैं बैअत करूंगा––देखो पहले में–––"

लाज़ीक़ा की विजय के बाद इस्लाम के सेना प्रमुख ह0 अबू उबैदा (र0) को पता चला कि रूम का राजा एक टिड्डी दल फ़ौज के साथ मुसलमानों पर टूट पड़ना चाहता है। मुसलमानों को उनका मुक़ाबला करने के लिए आगे बढ़ना था मगर बड़ी मुश्किल यह थी कि मुसलमानों के साथ एक बड़ी संख्या महिलाओं की थी और समझ में नहीं आता था कि उनको कहाँ छोड़ा जाए।

लाज़ीक़ा में उनको छोड़ दिया जाए।"—— किसी ने राय दी।

"नहीं"——दूसरे ने इससें मतभेद किया——"यह उचित नहीं कि ईसाईयों के इस शहर में हम औरतों को छोड़कर आगे बढ़ जाएं।" फिर क्या किया जाए?

सब लोग सोच में थे अब तीसरा हल यह हो सकता था कि इस बस्ती को ईसाईयों से ख़ाली करा दिया जाए ताकि वहां मुसलमान औरतों के लिए उनसे ख़तरा न रहे। बड़ी सादगी के साथ यही राय ह0 अबू उबैदा (र0) की ज़ुबान पर आ गई।
"यह कैसे हो सकता है?" एक फ़ौजी ने सिपाहसालार पर कुछ गरम होते हुए कहा ——"हम इसाईयों को अमन के लिए ज़ुबान दे चुके हैं। कैसे मुमकिन है कि हम इस मजबूरी के तहत अपनी बात से फिर जाएं।"

अगरचे महिला सुरक्षा के मसले पर यह तनाव की सी स्थिति बन गई थी और अनुचित हल के ख़िलाफ़ एक मामूली सिपाही सेना प्रमुख के सामने बोल पड़ा था——लेकिन ह0 उबैदा (र0) के सामने उस वक़्त न ज़रूरत का तक़ाज़ा था और न सिपाही का मामूली होना। वह महसूस कर रहे थे कि कहने वाले ने एक भारी बात कही है, जो हक़ है। एक मिनट भी किसी बहस

पर गंवाए बग़ैर वह फ़ौरन इस बात के आगे विनम्रता से झुक गए और बड़े पछतावे और कृतज्ञता के साथ बोले।

"बेशक मैं ही ग़लती पर था। यह कैसे हो सकता है जिन ईसाईयों को हमने अमन का आश्वासन दे दिया है, अब अपने उस वादे से फिर जाएं–– वास्तव में यह मेरी ग़लती थी।"

यरमूक जंग की तैयारियां करने में सेना प्रमुख के रूप में ह0 अबू उबैदा (र0) तन–मन से व्यस्त थे। इतने में ह0 ख़ालिद (र0) उनकी सेवा में पहुंचे––"अगर आप!" ह0 ख़ालिद (र0) ने विनती की––"तमाम फ़ौजों की कमान मेरे हाथ में दे दें और फ़ौज को आदेश करें कि वह मेरा पूरी तरह आज्ञा पालन करेगी, तो मुझे उम्मीद है कि हम जीत जायेंगे।"

इस्लामी फ़तेह की केवल एक उम्मीद दिलाई जा रही थी और इस उम्मीद की क़ीमत यह थी कि एक बेहद अनुभवी सिपाहसालार अपने पद को त्याग दे। उस वक़्त ह0 अबू उबैदा (र0) के ज़हन में यह बात नहीं आई कि जीत का नक़्शा बनाने के लिए मैं किसी से कम नहीं हूँ। किसी तरह का सोच–विचार किये बिना उन्होंने इस्लाम की फ़तेह की उम्मीद को सीने से लगा लिया और सिपाहसालारी की उपाधि हाथों–हाथ पेश कर दी। ह0 ख़ालिद (र0) जिस निःस्वार्थ भाव से यह पद मांग रहे थें, उसी भाव से ह0 उबैदा (र0) यह पद छोड़ रहे थे। दिलों का यह खुलूस (निष्कपटता) खुदा की कृपा से रूमियों की टिड्डी दल सेनाओं पर भारी पड़ा। दो दिलों की धड़कन के आगे लौह अस्त्रों में डूबी हुई रूमी फ़ौजें टिक नहीं सकीं। जंग के मैदान में अपने सिपाहियों की लाखों लाशों को रौंदती हुई यह फ़ौजें उल्टे पाँव भाग रही थीं और खुदा के यह दोनों नेक दिल बन्दे शुक्र की भावना से मुस्कुरा रहे थे।

क़ज़ाआ जनजाति की बग़ावत को दबाने के लिए तीन सौ मुजाहिदीन का जत्था ह0 उमरो बिन आस (र0) के नेतृत्व में रवाना किया गया। इसके बाद जो कुमुक भेजी गई, उसके सिपाहसालार ह0 अबू उबैदा बिन जर्राह (र0) बनाये गए। यह बड़े सम्मान का विषय था कि इस सहायता जत्थे में शेख़ैन जैसी हस्तियां भी ह0 अबू उबैदा (र0) के पीछे चल रही थीं–– लेकिन जब यह फ़ौज मोर्चे पर पहुंची तो ह0 अबू उबैदा (र0) की उनके खुदा ने परीक्षा ली। ह0 उमरो बिन अल आस (र0) ने कहाः

"आप लोग मेरी मदद के लिए भेजे गए हैं, इसलिए पूरी फ़ौज की कमान मेरे ही हाथ में रहेगी।"

"बेशक"––ह0 अमीनुल उम्मत ने इरशाद फ़रमायाः "आप जिस सेना के अफ़सर हैं उसके अफ़सर रहेंगे––लेकिन यह सहायता दल मेरी ही ज़िम्मेदारी और मेरी ही कमान में भेजा गया है, इसलिए आप अपनी जगह अफ़सर रहें और मैं इस कुमुक दल का प्रभारी रहूँ।"

लेकिन ह0 उमरो बिन अल आस (र0) ने यह बात नहीं मानी। सम्भावना थी कि मतभेद झगड़े का रूप ले ले–– कि अचानक ह0 अबू उबैदा (र0) ने अपनी तमाम वरिष्ठता और आदर–सत्कार के बावजूद खुशी से हथियार डाल दिए और सेना प्रमुख के पद से चुपके से हटकर मातहत बनकर काम करने को तैयार हो गए।

विजयी अभियानों की बहुतायत के बाद जब हर तरफ़ दौलत की रेल–पेल हो रही थी और स्वाभाविक रूप से लिबास और

खान–पान में मुसलमानों का जीवन स्तर ऊँचा हो रहा था, उस वक़्त ह0 अबू उबैदा (र0) जिन्होंने शाम फ़तेह किया था, रोटी के सूखे टुकड़े पानी में भिगो–भिगो कर खा रहे थे।बैतुल मुक़द्दस की यात्रा के मौक़े पर ह0 उमर फ़ारूक़ (र0) ने ह0 अबू उबैदा (र0) से बेतकल्लुफ़ी और सुशीलता से कहाः

"भई आज तो हमारी दावत कर दो ना––!"

एक लम्हे के लिए उन्होंने कुछ सोचा––सोच यही थी अपने समय के ख़लीफ़ा के सामने मोटा–झोटा खाना लाना उचित है या नहीं। आख़िर अन्दर गए और वही रोटी के सूखे टुकड़े पेश करते हुए क्षमा चाही किः

"मेरी तो यही ख़ुराक है। रोटी के यह टुकड़े सूखे हुए हैं मगर पानी में तर करके इनको दो वक़्त खा लिया करता हूँ।" आत्म संयम में आस्था और सम्मान की भावना से ह0 उमर फ़ारूक़ (र0) की आंखें भीग गईं।"–––दरवेशी का पैरोकार साधुता के पैरोकार को रश्क के साथ देख रहा था––"ऐ अबू उबैदा (र0)!" उन्होंने ठण्डी आह खींचते हुए कहा––"शाम में आकर सब ही बदल गए मगर एक तुम हो कि अपनी उसी परम्परा पर क़ायम हो।"

फ़िलिस्तीन के मशहूर शहर अमवास में प्लेग की महामारी फूटी और देखते ही देखते इस वबा ने शाम, मिस्र और इराक़ को अपनी लपेट में ले लिया। हज़ारों इन्सान मौत के घाट उतर रहे थे और ठीक उसी ख़तरनाक इलाक़े में ह0 अबू उबैदा (र0) इत्मेनान से ठहरे थे। तक़दीर पर उनका ईमान ठोस था और इस विकट परिस्थिति में ऐसे ख़तरों से बचते हुए भी डरते थे कि कहीं तक़दीर पर ईमान की अवज्ञा न हो जाए। ह0 उमर

फ़ारूक़ (र0) को यह ख़तरनाक हालात पता चले तो परिस्थितियों का निरीक्षण करने के लिए मौक़े पर पहुंच गए और बड़ी विनम्रता के साथ ह0 अबू उबैदा (र0) से कहा कि इस जगह से दूर चलिए।

"क्या तक़दीर से भागते हो?" मोमिन बन्दे ने ईमान के जोश में पलट कर जवाब दिया––"हां––खुदा की तक़दीर से खुदा की तक़दीर ही की तरफ़ भागता हूँ"–– ह0 उमर फ़ारूक़ (र0) ने हिकमत (विवेकशीलता) के साथ जवाब दिया।

मगर यह बात ह0 अबू उबैदा (र0) के दिल को न लगी और महामारी के क्षेत्र से जान बचाकर जाना उनको तक़दीर पर ईमान के ख़िलाफ़ लगा। ह0 उमर (र0) तड़प रहे थे कि इजतिहादी (आवश्यक संशोधन संबन्धी) ग़लती की वजह से एक बड़ी क़ीमती जान ख़तरे में है। मगर अदब के पास से कुछ कह न सके और बड़ी बेचैनी के आलम में मदीना तशरीफ़ ले आए। हर समय उनका दिल ह0 अबू उबैदा (र0) में अटका हुआ था––आख़िर एक तदबीर सोची और उनको ख़त लिखा कि आप से मुझे एक काम है––इसलिए ज़रा मदीने हो जाईए। ह0 अबू उबैदा (र0) मतलब समझ गए इसलिए इस ख़त का जवाब जा पहुंचा किः

"मैं इस्लामी लश्कर को यहां छोड़कर केवल अपनी जान बचाने के लिए तुम्हारे पास नहीं आ सकता। जो खुदा को मन्जूर है वह तो होकर ही रहेगा।"

यह ख़त पढ़कर बेचारगी के साथ ह0 उमर (र0) रे पड़े। आख़िर मजबूर होकर उन्होंने यह निवेदन किया कि इसी इलाक़े में किसी बेहतर जगह पर प्रस्थान कर लीजिए और सेना को भी

साथ ले जाइए। यह बात ह0 अबू उबैदा (र0) ने मान ली– लेकिन दूसरे मक़ाम पर पहुंचते ही उन पर प्लेग का आक्रमण हो गया और हंसी–खुशी इमीनुल उम्मत (र0) ज़िन्दगी की अमानत से निवृत्त हो गए। इस ख़बर को पाकर ह0 उमर फ़ारूक़ (र0) फूट–फूटकर रोए और फ़रमाया कि हुजूर (स0) और ह0 अबू बकर सिद्दीक़ (र0) के बाद यह मेरी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा सदमा है।

कितना उच्च कोटि का था वह इन्सान जिसके बारे में ह0 उमर फ़ारूक़ (र0) यह कहा करते थे कि मैं ख़िलाफ़त के लिए उनको नामित करूंगा और खुदा से विनती करूंगा कि तेरे रसूल (स0) ने जिस शख़्स को "अमीनुल–उम्मत" ठहराया था। ख़िलाफ़त की अमानत उसी को सौंप आया हूँ।

यह उस आदमी के शब्द थे जो अपने बाद किसी को ख़िलाफ़त के लिए नामित करने के विचार से ही कांपता था कि कहीं ऐसा न हो कि उसके कर्मों की ज़िम्मेंदारी और उत्तरदायित्व मेरे हिस्से में आ जाए। यह उस शख़्स के बोल थे जिसने अपनी औलाद पर भी ख़िलाफ़त के पद का कर्तव्य निभाने का एतेबार न किया था और यह वसीयत छोड़ी थी कि "जिसको चाहो चुन लो मगर ख़िलाफ़त को कोई हक़ उमर (र0) के वंश के लिए नहीं है। देखो! यह हक़ मैंने हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया है।"––हां वही व्यक्ति इसकी अभिलाषा रखता था कि काश अपने बाद ख़िलाफ़त के लिए मैं अबू उबैदा बिन जर्राह (र0) को नामित करता।

कैसे खुशनसीब थे अबू उबैदा (र0) कि जिन्होंने खुदा के दीन को सरबुलन्द करने के लिए अपने आपको धूल में मिला दिया। सैनिकों के कमान्डर थे मगर खुदा की ज़मीन पर कैसे डरते–डरते चलते थे––जिन्होंने शाम पर विजय पताका लहराई थी मगर अपनी विजयों के सुनहरी दौर में सूखी रोटी के टुकड़े खा–खाकर खुदा के जन्नत के वादे पर राज़ी थे। परीक्षा की यह कड़ी मन्ज़िलें सर हो गईं। और उनका तमाम दुःख–दर्द इतिहास में रह गया––मगर इन पराक्रमों और कोशिशों का अनन्त पुरूस्कार इन्शा अल्लाह हमेशा उनके साथ रहेगा––कितनी उचित और अर्थपूर्ण थी उनकी खुशी जो अनन्त सुकून के इन्तेज़ार में दुनिया के अस्थायी दुःख झेल रहे थे लेकिन खुदा जाने कितनी बड़ी तबाही है जिनके लिए विलासिता ही सब कुछ है––चाहे आख़रत सिरे से तबाह होकर रह जाए!! जो चार दिन की चाँदनी पर मगन है मगर ज़रा फ़िक्र नहीं कि कहीं क़ब्र में घुप अन्धेरा न पड़ा रह जाए।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

ऐ मुसलमाँ अपने दिल से पूछ मुल्ला से न पूछ,

हो गया अल्लाह के बन्दों से क्यों ख़ाली हरम?

14

नुक़ूशे दवाम (अमिट निशान)

हक़ की ग़ैरत भी क्या चीज़ है जो एक मासूम बच्चे के सीने में भी जवानी की आग भर देती है!

जुबैर बिन अल अवाम (र0) उस वक़्त बस एक कम उम्र के लड़के ही थे जब मक्के में यह हिला देने वाली अफ़वाह उड़ी

कि मुशरिकों ने आज तो खुदा के रसूल (स0) को गिरफ़्तार कर लिया है।––यह ख़बर सबने सुनी––बूढ़ों ने भी इस अफ़वाह को सुना मगर सत्य की ग़ैरत के अग्निकुण्ड से जिस नन्हीं सी चिंगारी ने सबसे पहले घोर अन्ध्यारे पर वार किया, वह खुदा की क़सम! एक बच्चा था––एक नन्हा सरल मासूम! जुबैर अवाम (र0) का बेटा जुबैर (र0)।

रगों में खौलता हुआ खून बेताब था कि रग–रग से टपक पड़े––हाथ में सुंती हुई नंगी तलवार घायल पक्षी की तरह बेचैन थी कि जिन नापाक हाथों ने रिसालत (स0) के दामन को छूने का दुस्साहस किया है उनको जिस्म से जुदा कर दे। इसी हाल में यह बच्चा एक ख़तरनाक निर्णय के साथ मक्के के गली–कूचों से आंधी की तरह गुज़रा और रिसालत के आस्ताने पर सब जानने के लिए आवाज़ बुलन्द की, वहां उसने न जाने किस हाल में यह देखा कि मुहम्मद–ए–अरबी (स0) जिनके मन की पीड़ा ने अरब और अजम की न मिटने वाली दूरियों पर बिछड़ी हुई मानवता को गले मिला दिया। मुहम्मद–ए–अरबी(स0) जिनका नाम लेते हुए दिल तड़प कर होंठों पर आ जाता है––मुहम्मद–ए–अरबी (स0) जिनको देखकर सारी कायनात भूल जाती थी और इन्सान को अपना इकलौता खुदा याद आता था। जुबैर (र0) ने यह दृश्य देखा और उसके बदले की भावना का पूरा आक्रोश आंसुओं में ढल कर आंखों से जारी हो गया। एक बच्चा खुशी की शिद्दत में बच्चों की तरह रो पड़ा था।

ऑहज़रत (स0) महज़ कृपा दृष्टि और हैरत के साथ उसको सीने से लगाने के लिए आगे बढ़े।

"ऐ जुबैर (र0) यह क्या?"

"जी!" दूसरी तरफ़ से आंसुओं में भीगी हुई आवाज़ आई।

मैंने सुना था खुदा न करे आपको गिरफ़्तार कर लिया गया है––आप (स0) को"––जुबैर (र0) न जाने क्या कहना चाहते थे जिसको खुशी की हिचकियों ने कहा, शब्दों ने नहीं। मगर खुदा के रसूल (स0) ने सब कुछ समझ लिया––आप (स0) की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। हांपती हुई काया अब भी बता रही थी कि अभी–अभी इस मासूम बच्चे के सीने पर कितना बड़ा ग़ैरत का तूफ़ान गुज़र चुका है। नंगी तलवार अब भी कह रही थी कि निकलने वाला किस इरादे से निकला था––लेकिन चमकदार आंखों से झलकते हुए मोती इस हक़ीक़त का उद्घोष कर रहे थे कि यह एक बच्चा है––बस एक अबोध और कमज़ोर बच्चा! आप (स0) के हाथ सहसा दुआ के लिए फैल गए––पैग़म्बर (स0) का दिल खुदा जाने अपने खुदा से बच्चे के लिए क्या कुछ मांग रहा था जिसके हाथों इस्लाम के नाम पर पहली तलवार नियाम से बाहर निकली।

इस्लाम!––जिसके लिए सबसे पहले एक बूढ़ी सुमय्या (र0) ने जान दी।

इस्लाम!––जिसके लिए सबसे पहले एक मासूम जुबैर (र0) ने तलवार उठाई।

यही बच्चा जब सचमुच जवान हुआ तो फ़रिश्ते उसके पद्चिन्हों पर चले। बदर की जंग में जब इस्लाम का यह सिपाही बसंती रंग की पगड़ी पहने शहादत के जोश में तड़पता हुआ निकला तो अमीन और सत्यवादी (स0) ने फ़रमाया।

"जुबैर को देख लो। आज ठीक इसी लिबास में फ़रिश्तों की सेनाएं हैं।"

यही वह युद्ध और संघर्ष का मोर्चा था जहां लोहे की तलवार थककर लचक गई मगर वीर शहादत के घाव की धुन में किसी तरह न थकता था––आख़िर उसकी तीव्र अभिलाषा पूरी हुई––इसलिए एक ऐसा भी गम्भीर घाव झेला जिसका सूखा गहरा घाव उसके कफ़न में उसके साथ गया–– अरबा बिन जुबैर (र0) का कहना है कि यह घाव का निशान पूरी उम्र उनके बाप के जिस्म पर एक बड़ी यादगार की तरह क़ायम रहा।

उम्र भर तक़दीर उन पर हुन लुटाती रही मगर पूरी उम्र उनकी ज़िन्दगी में फ़क़ीरों की सादगी बनी रही––उनके एक हज़ार गुलाम जब दिन भर की मेहनत का फल एक भारी भरकम रक़म के रूप में उनके सामने लाकर ढेर कर देते तो अचानक यह विचार आपकी आत्मा को झंझोड़ डालता कि यह सब लोग अपने खून–पसीने की गाढ़ी कमाई मेरे सामने लाकर ढेर कर देते हैं––केवल इसलिए कि यह मेरे गुलाम हैं। जब गुलामी का कर्तव्य यह है तो फिर बन्दगी क्या कहती है?––उस गुलाम को क्या करना होगा जो खुदा का गुलाम भी है और उसका पैदा किया हुआ भी? इन विचारों के साथ आपकी नज़र उस चमकते–दमकते ढेर से हट जाती और आप दोनों हाथों से उसकी पाई–पाई अपने माबूद (पूज्य) की राह में लुटा देते।

इस दानशीलता की भावना का आभास दुनिया को उस वक़्त हुआ जब जंगे जमल पर जाते हुए आप ने अपने बेटे अब्दुल्लाह (र0) से कहाः

"जिगर के टुकड़े! मुझे सबसे ज़्यादा फ़िक्र अपने क़र्ज़ की है। बाईस लाख की अमानतें जो क़र्ज़ के रूप में ली गईं और क़र्ज़ देने में खर्च हुईं, मेरी सम्पत्तियां बेचकर अदा कर दी जाएं। इसमें से एक तिहाई ख़ास तुम्हारे बच्चों के लिए वसीयत करता हूँ। अगर माल फिर भी काफ़ी न हो मेरे मौला से आस लगाना।"

"मौला?" बेट ने पूछा।

"आप का मौला कौन है अब्बा जी?"

शौक़ और जज़्बे से कंपकंपाती आवाज़ आई।

"मेरा मौला––मेरा खुदा!––मेरा खुदा जिसने हर आड़े वक़्त में मेरी मदद फ़रमाई।"

बनू क़रीज़ा ने मुसलमानों के साथ सन्धि तोड़ने का काम किया तो सच्चाई जानने के लिए एक ऐसे राजदूत की आवश्यकता थी जो अपनी जान हथेली पर रखकर अकेला ही इन सन्धि भंग करने वालों के बीच जाने को तैयार हो सके। यह कोई जिहाद नहीं था जहां मुजाहिद के साथ मुजाहिदों की सेना जाती थी––यह एक ख़तरनाक दूतकर्म का संवेदनशील पड़ाव था जिसकी ख़तरों भरी राह में एक इन्सान को अकेले ही एक फ़ौज का काम अन्जाम देना और मौत की ललकार को स्वीकार करना था। खुदा के रसूल (स0) ने आवाज़ दी––कौन है जो इस काम के लिए अपनी सेवाएं पेश करे?" और तीन बार यह आवाज़ दी गई, हर बार जो शख़्स पहल करता था, वह जुबैर बिन अवाम (र0) थे।

"मैं!–– ऐ रसूले खुदा! मैं....."

इस्लाम के लिए इस जांनिसारी का उमड़ता जज़्बा देखकर आप (स0) पुकार उठे :

“ऐ जुबैर! मेरे माँ–बाप तुझ पर कुर्बान।”

जिस हस्ती के हुज़ूर (स0) उसके चाहने वाले बेहद शौक़ के आलम में यही शब्द इस्तेमाल करते थे, आज उसी बुलन्द और सर्वश्रेष्ठ हस्ती की शुभ ज़बान पर जुबैर के लिए “फिदाकः अमी व अबी” के प्रेमपूर्वक शब्द थे। अल्लाहु अकबर! जुबैर बिन अवाम (र0) की बुलन्द तक़दीर का सौभाग्य!

और अब वह जुबैर (र0) दुनिया के उतार–चढ़ाव से दूर ईमान और अमल की राह में घाव पर घाव खाकर सदा के लिए चैन की नींद सो रहे हैं। वह ज़ख़्मों की कसक हमेशा के लिए ख़त्म हुई और अब उसका चिर स्थायी ईमान उन पर रहमत का स्थायी साया किये हुये है। लेकिन हम–– हम जो मुसलमान हैं ––हमारा क्या अन्जाम होगा?––यह सवाल सदियों से फ़िज़ा में गूंज रहा है, मगर कहीं से कोई जवाब नहीं मिलता।

वह ज़माने में मुअज़्ज़िज़ थे मुसलमां होकर।

और तुम खुवार हुए तारिके कुरआँ होकर।।

16

मोमिन की परेशानी

तलहा (र0) के चेहरे पर गहरी परेशानी टपक रही थी––

जैसे कोई बहुत बड़ा भावनात्मक ख़तरा मंडरा रहा हो!––या जैसे कोई कुख्यात मुजरिम रंगे हाथों पकड़ा जाए। जीवन साथी सुअदा (र0) ने यह देखा तो घर का सारा काम–काज छोड़कर घबराई हुई उनके पास आईं और परेशान हाल पति के चेहरे के भावों को तुरन्त आंकने लगीं––"परेशानी का राज़ क्या हो सकता है?" उन्होंने सोचा मगर समझ में न आया––जीवन की आपा–धापी में दूर–दूर तक कोई ऐसी बात दिखाई न दी जिससे ऐसी परेशानी का सामना हो सकता हो।

"क्या बात है?" आख़िर उनसे रहा न गया और बड़े प्यार से मन की पीड़ा से बोल उठीं––कुछ तो बताइए आख़िर क्या हादसा पेश आ गया है?"

चिन्ता और क्षोभ के भारी बोझ तले सीने पर ढलका हुआ सिर उठा––और व्याकुलता में डूबी हुई दो नूरानी आँखें सुअदा (र0) के मासूम चेहरे पर जम गईं––लेकिन आप (र0) ने कोई जवाब नहीं दिया।

"अल्लाह के लिए कुछ तो बोलिए!" सुअदा (र0) कुछ और बेताब हो गईं। "आख़िर क्या माजरा है?––क्या मुझसे कोई ग़लती हो गई है?"

"नहीं भाग्यवान!" ठण्डी आह भरते हुए तलहा (र0) के होंठों को हरकत हुई––कुसूर तुम्हारा नहीं"––मेरा है। क्या तुम देख नहीं रही हो कि मेरे पास कितना धन जमा हो गया है। उफ़ मेरे खुदा!––सोने–चाँदी के ढेर दुनिया में अपने पीछे यूँ ही छोड़ गया तो खुदा के पास इन हाथों में क्या ले जाऊंगा?"

और यह कहकर आप ख़ाली हाथों को अफ़सोस के साथ मलने लगे। नेक दिल औरत ने अपने शौहर की यह बात सुनी, लेकिन अचरज का एक अक्षर भी मुँह से नहीं निकला। तलहा (र0) की यह अजीबो ग़रीब परेशानी सुअदा (र0) की नज़र में भी बड़े फ़िक्र की बात थी। वह यह महसूस करती थीं कि उससे बड़ा बदनसीब कौन होगा जिसके हाथों में तो सब कुछ हो मगर दिल में कुछ भी न हो!—— जो दुनिया को सब कुछ दे जाए और साथ कुछ न ले जाए।——जो इन्सानों के बीच खुशहाल रहा हो मगर जब खुदा के दरबार में हाज़िर हो तो उसको भूखे–नंगे भिखारियों की पंक्ति में जगह दी जाए!!

"आप परेशान क्यों होते हैं?" सुअदा (र0) ने प्रेम भाव के साथ कहा——"सीधा सादा समाधान है इसका। रूपया निकालिए और मौला की राह में लुटा दीजिए।"

और तलहा (र0) ने यह शब्द सुने तो बच्चों की तरह खुशी से खिल गए। खुदा की राह में लुटा देने की कल्पना ने दौलत को सचमुच एक क़ीमती ख़ज़ाने में ढाल दिया। जिसकी अमानत है उसी के हवाले कर देने का विचार दिल का सारा बोझ हलका कर गया। दौलत का क़ीमती ढेर——पूरे चार लाख दीनार! मगर उस मोमिन मर्द और मोमिना को पूरा यक़ीन था कि खुदा की जन्नत कहीं अधिक मूल्यवान है।

चार लाख दीनार का ख़ज़ाना बेतहाशा लुटना शुरू हुआ ——बनू तमीम के अनाथों ने इस धन से अपने दामन भरते हुए सोचा कि इस्लामी समाज की गोद में उनके पिता का दुलार पूरी ताक़त से ज़िन्दा है——विधवाओं ने अपने सुहाग के जश्न आयोजित होते हुए देखे और क़र्ज़ की ज़न्जीरों में जकड़े हुए इन्सानों ने एक बार फिर खुदा की ज़मीन पर आज़ादी का सांस

लिया। देखते ही देखते तलहा (र0) ने चार लाख दीनार खुदा की राह में लुटा दिए। अपने इर्द–गिर्द की दुनिया को खुशहाल बनाने के बाद वह स्वयं ख़ाली हाथ खड़े हुए थे––मगर अब उनकी रूह की चिन्ता दूर हो चुकी थी––अब उनके होठों पर एक अमिट मुस्कान का नूर था। हां अब उनके हाथों की दौलत उनके दिल की गहराईयों में हमेशा के लिए समा गयी थी––अब वह इस तरह खुशी–खुशी अपने घर लौट रहे थे जैसे किसी भयावह जंगल में भटकने वाला परेशान राही ख़तरों के अन्ध्यारे से निकल कर घर की राह पर आ लगा हो।

एक बार फिर यही तलहा (र0) सोग में डूबे हुए खड़े थे। उमर इब्ने ख़त्ताब (र0) उधर से गुज़रे। वह चलते–चलते रुक गए और उनकी परेशानी दूर करने के लिए ज़िन्दादिली का मनोवैज्ञानिक अन्दाज़ अपनाते हुए फ़रमाया––

"तलहा (र0)! ख़ैर तो है? क्या किसी से लड़ गए हो?"
"नहीं!" परेशानी से थकी हुई आवाज़ तलहा (र0) के सूखे होंठों पर सिसक गई।" फिर क्या बात है आख़िर?"

दु:खी मन से उत्तर मिला––"ऐ उमर (र0)!– मैं खुदा के रसूल (स0) की एक क़ीमती बात भूल गया हूँ। आप (स0) ने कुछ लफ़्ज़ बयान फ़रमाये थे और कहा था कि मौत की गोद में दम तोड़ती हुई ज़ुबान इन लफ़्ज़ों को अदा करेगी तो प्राण त्यागने का कष्ट दूर हो जायेगा और चेहरे पर सुकून की ताज़गी फैल जाएगी––मैंने उन लफ़्ज़ों को याद किया था मगर अफ़सोस मुझ पर कि अब––वह शब्द मुझे किसी तरह याद नहीं आ रहे हैं।"

ह0 उमर (र0) ने मोमिन मर्द के ग़म की भावनाओं की तीव्रता को गौरव और खुशी के साथ महसूस किया और बोले–"क्या खुदा के रसूल (स0) ने हमें "लाइला–ह–इल्लल्लाह" से भी बेहतर कोई कलिमा सिखाया था?"

तलहा (र0) यह सुनकर खुशी से उछल पड़े––"क़सम है खुदा की! यही थे वह शब्द––बिल्कुल यही!!"

कैसी हसीन होगी वह दुनिया जिसमें तलहा (र0) जैसे मर्द और सुअदा (र0) जैसी औरतें आबाद थीं!––हां वह मुसलमान थे–– और हम भी मुसलमान हैं––मगर अन्तर केवल यह है कि जहां हमारी खुशी की इन्तेहा होती है वहां से इनका ग़म शुरू होता था–– फिर इनकी खुशी कौन सी खुशी थी? कौन है जो इसकी कल्पना भी कर सके?––हम भी मुसलमान हैं––मगर उस इस्लाम की बुलन्दियों की परिकल्पना भर से ही हमारी ज़िन्दगी थक कर गिर जाती है जो तलहा (र0) की खुदा की मुहब्बत से पुर सीने में और सुअदा (र0) की सदाचारी फ़ितरत में रचा बसा था––आह! क्या हम सचमुच मुसलमान कहलाये जाने के पात्र हैं? ऐ काश! इस बात का जवाब "हां" में होता।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

;s x+kt+h ;s rsjs iqjvljkj cUns
ftUgsa rwus c[+'kk gS t+kSd+s [k+qnkbZ
nksuhe mudh Bksdj ls lgjk&vks& nfj;k
fleV dj igkM+ mudh gScr ls jkbZ

17

इरफ़ाने हक़ की वज्द अन्गेज़ियां
(हक़ को पहचाना तो खुद को भूल गए)

"माँ ..... या..... खुदा?"

क्या क़यामत का सवाल था ह0 सअद इब्ने अबी वक़ास (र0) के सामने ज़रा देर हुई थी कि वह सिद्दीक़े अकबर (र0) के क़दमों के निशाँ पर चलकर एक भयावह फैसला किये हुये जज़्बे और जुनून की पराकाष्ठा से गुज़रते हुए देखे गए थे––––अभी–अभी उन्होंने पत्थर के देवताओं की तरफ़ से नफ़रत से मुँह फेरकर अपने असली परवरदिगार व सृष्टा के क़दमों पर अपने अस्तित्व को साक्षात् सजदा बनाकर गिरा दिया था––और अभी–अभी जबकि उनका नया–नया ईमान कुछ घण्टों की उम्र तय कर सका था, सत्य और सत्य पर दृढ़ता के क़ानून ने उनको बलिदान के लिए पुकारते हुए कहा था। "माँ–––या खुदा?" सोच लो इन दोनों में कौन ज़्यादा प्यारा है? किस को लेते हो और किस को छोड़ते हो?––फिर–– माँ कोई ऐसी वैसी माँ नहीं थी। उसने सअद (र0) को जिस खून–ए–दिल व जिगर से पाला था वही खून एक बेपनाह प्यार और अथाह मातृ–प्रेम बनकर सअद (र0) की रग–रग में उनके युवा खून की गरदिश बनकर रह गया था। जीवन के लगातार

उन्नीस साल इसी ममता के सम्मान की सौगन्ध खाते हुए बीते थे। बचपन से लेकर नौजवानी की उन भावुक मन्ज़िलों तक उन्होंने खुदा से पहले माँ ही को––सिर्फ़ माँ ही को दिल और रूह की अन्तिम गहराईयों से चाहा था।

लेकिन–– आज उनके जीवन के कुछ ईमानी क्षण न जाने क्या चीज़ बन गए थे कि चन्द पलों ने उन्नीस साल की ज़िन्दगी की सारी बुनियादें हिला डाली थीं। शायद इसलिए कि उन्नीस साल तक वह सिर्फ़ उस औरत को जानते थे जिसने उनको अपनी कोख से जन्म दिया था––लेकिन आज जीवन के इन कुछ क्रान्तिकारी लम्हों ने उनको उस अकेले सत्ताधारी सृष्टा तक पहुंचा दिया था जिसकी महान कुदरत के अनदेखे हाथों में माँ के गर्भ की अन्धेरी तन्हाइयों में बाप की एक अपवित्र बूँद से इन्सान जैसी पवित्र सृष्टि डालकर दिखाई। वह आज इस आबे–हयात (अमृत) के स्रोत को पा चुके थे। जिसके आगे माँ की सारी ममता शबनम की एक छोटी बूँद से भी ज़्यादा तुच्छ और मूल्यहीन है।

"सअद (र0)!––हाए हाए सअद (र0)!!––"सअद (र0) ने देखा कि उनकी काफ़िर माँ खूने दिल में नहाई हुई सीना पीट रही है और सर के बाल नोचे डालती है। चीख रही बिलख रही और चिल्ला रही है। "सअद!––हाय सअद!!––तू बेदीन हो गया। मैं भी देखती हूँ––कि तू––कैसे जाता है मुहम्मद (स0) के पास।––मुझ पर भी खाना–पीना हराम है अगर तूने उसके लिए नए दीन को न छोड़ा!––हां देखती हूँ तू कैसे जाता है वहां! जायेगा तो तुझे अपनी दुखियारन माँ की लाश को रौंदते हुए जाना होगा––जान दे दूंगी मगर तुझे यूं बेदीन न होने दूंगी।"

यह दृश्य देखकर सअद इब्ने वक़ास (र0) का दिल हिल जाना चाहिए था––लेकिन दिल इस तरह हिला कि ईमान व यक़ीन के पाँव कुछ और जम गए। बलिदान की रक्तरंजित चोट खाकर उनके सीने से खून का सुर्ख़–सुर्ख़ फ़व्वारा फूटा और ईमान के नये नवेले पौधे को कुछ और तरो–ताज़ा कर गया। वह सर झुकाए सब कुछ सुनते रहे––सर उठा तो आँखें तौहीद के गौरव से सुर्ख़ गुलज़ार आँखें ममता के अस्तित्व को चीरते हुई सीधे अपने ख़ुदा तक चली गईं––उन आँखों में आज एक नई––बिल्कुल अनोखी दृष्टि थी जिसको न माँ जान सकी और जो न माँ को पहचान सकी!––एक नज़र–– साक्षात् नूर––नूर ही की तलाश में गुम––अन्धेरों से बेख़बर–– तारीकियों से बचकर निकलते हुए––चाहे यह अन्धयारे चाहने वाली माँ का दिल हिलाने वाला रूप धारण कर क्यों न आ खड़ी हो।

यह नज़र उठी तो ईमान की रूहानी धड़कनों से गोश्त–पोस्त (हाड़ मांस) का शीशमहल थरथरा उठा––सअद (र0) की जज़्बात से बोझिल आवाज़ यूं सुनाई दे रही थी––"माँ!––तू इस बेटे को तू खूब पहचानती है जिसको तूने जना है और इतने बड़े सृष्टा को ज़रा नहीं पहचानती जिसने तुझे भी पैदा किया और मुझे भी!!––मेरी नादान माँ––देख तो सही! मैंने कैसा प्यारा फ़ैसला किया है जो मुझे तुझसे ज़्यादा प्यारा है––आह! तू नहीं जानती कि वह इन्सान जिसका नाम मुहम्मद (स0) है उसको देखकर दिल क्यों पुकार उठता है कि आप पर मेरी माँ न्यौछावर–मेरा बाप कुर्बान और मेरी जान भी।––"

तीन दिन तक खून और ईमान के बीच जंग जारी रही––ममता और बंदगी के दो भाव पूरी ताक़त से टकराते रहे––तीन दिन तक सअद (र0) की माँ खान–पान त्याग कर सअद (र0) को पुकारती रही––भूख–प्यास के जबड़ों में पिसती हुई ममता की

जिगर चीरने वाली पुकार रह–रहकर डूबती–उभरती रही लेकिन––हर बार सअद (र0) के होंठों से ज़िन्दगी के खून में भीगी हुई और आँसुओं में डूबी हुई यही आवाज़ गूंजती बुलन्द होती रही कि मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (स0) खुदा के बन्दे और पैग़म्बर (दूत) हैं।"

कैसा होगा वह आदमी जिसका दिल कुछ इस तरह धड़का कि अपने खून के धारों का रुख़ पलट कर रख दिया––वह इस नये आयाम पर चला तो पीछे रहना तो कैसा पीछे मुड़कर भी न देखा। कैसा फ़लक चूमने वाला यह अटल सत्य का भाव कि उसको सृष्टि के मालिक खुदा ने मुहम्मद (स0) के पावन सीने पर आकाशवाणी बनाकर उतारा––कुरआन की आयतें अर्श की ऊँचाईंयों से चलीं ताकि ज़मीन के फ़र्श पर उतर कर खून और ईमान के संघर्ष में सर–धड़ की बाज़ी लगा देने वाले सअद (र0) को संरक्षण प्रदान करें।

व इन जाहदा–क अला अन तुशरि–क––बी मा लैस ल–क बिही इल्मुन् फ़ला तुतिअ्हुमा...

"–अगर दोनों (माता–पिता) यह कोशिश करें कि तू मेरे साथ किसी को शरीक ठहराए जिसका तुझको कोई ज्ञान नहीं तो मत मान उनका कहा!"

यह उसी पवित्र कुरआन की आवाज़ थी जिसने इन्सान को खुदा के शुक्र (कृतज्ञता) के साथ माता–पिता के शुक्र पर उभारा है।

सअद (र0) के क़दमों को लड़खड़ाने में ममता नाकाम हुई तो क्रूरता आगे बढ़ी। अपनेपन के बाद परायेपन ने वार किया।

आँसुओं की बारिश रुकी तो पथराव शुरू हो गए। कांटें बरसे, अंगारों की बौछार हुई––लेकिन युवा सअद (र0) का सत्य–भाव जवान ही रहा–नहीं!––उस पर तो जैसे कुछ और यौवन आ गया। उसके हौंसले और उमंगें कुछ और उमड़ पड़ी––खुद को बचाने के बजाए तीरो–नश्तर की ज़द पर उसने केवल सीना ही नहीं खोल दिया बल्कि उसमें तो उस समय भी आस्तीनें चढ़ा ली थीं जब मक्के का प्रकोप पूरी बस्ती में सत्यनिष्ठ लोगों के गरीबान चाक कर रहा था। हां जिस वक़्त अल्लाह वाले बस आँसू पी रहे थे, कुफ़्र का खून पीने के लिए सअद (र0) के युवा खून में शोले भड़क रहे थे। जब पहाड़ की एक ख़ामोश घाटी में छिपे हुये खुदा के कुछ बन्दे अपने खुदा को याद कर रहे थे––जब काफ़िरों की एक मस्त टोली उधर आ निकली और कुफ़्र ने इस्लाम की जांबाज़ी पर निर्बलता के पाप का धोखा खाकर सत्यनिष्ठा पर ठहाका लगाया तो यह सअद इब्ने वक़ास (र0) ही तो थे जिन्होंने भरपूर शक्ति से आगे बढ़कर एक हड्डी के भरपूर वार से कुफ़्र का सर कुचलने का पहली एतिहासिक शुरूआत की थी।

अत्याचार और अनाचार की अग्नि बाढ़ कुछ और तेज़ हुई––जब तक सिर्फ़ जान ख़तरे में थी, खुदा के बन्दे जान की बाज़ी लगाए हुए हक़ का सन्देश बुलन्द करते रहे––लेकिन जूँ ही जान से भी प्यारा ईमान ख़तरे में पड़ा तो यह लोग उस अन्तिम बलिदान के लिए उठ खड़े हुए जिसका छोटा सा नाम वतन छोड़ना और अल्लाह के लिए हिजरत (विस्थापन) है। खुदा की जन्नत के यह ज़मीनी नागरिक––दुनिया भर को परदेस और केवल एक सुन्दर पड़ाव ठहराने वाले उठे और घर–बार से दामन छुड़ाकर वीरान स्थलों की ओर चल निकले। मक्का छोड़ा और मदीने की दूर–दराज़ बस्ती में विस्थापित बनकर पड़ाव डाला––ख़तरा अब भी क़ायम था––ख़तरा था कि ईमान के

मक्की शत्रु इस त्याग को देखकर चैन से न बैठेंगे, इसलिए कुरैश की गतिविधियों की जांच करने के लिए मुजाहिदों (पराक्रमियों) का एक जांबाज़ दल रवाना किया गया तो खुदा का यह बेबाक बन्दा भी परवाने की तरह साथ हो लिया।
वह तो हर क्षण इस लम्हे के लिए बेताब था, जहां वह सत्य को असत्य से टकरा डालने, खुदा को छू लेने वाला सर बेचैन था कि खुदा की गली में कटकर गिर पड़े––यह दल समन्दर के किनारे तक रेगिस्तान की ख़ाक छानता चला गया तो वहां कुरैशियों की एक टोली दूर से दिखाई दी। सअद (र0) के लिये यह दृश्य केवल देखने की चीज़ न था––शरीर में दौड़ने वाला खून जिहाद का जज़्बा बनकर उसके हाथों तक आ पहुंचा और दूर फ़ासले पर नज़र आने वाली खुदा के दुश्मनों की जिस टोली पर लोगों की नज़र जमी थी उस पर सअद (र0) के तौहीद की कमान से निकले तीर ने अपना पहला निशाना लगाकर दम लिया। इस्लाम के तरकश का यह वह पहला तीर था जिसने बातिल (असत्य) के सीने में पेवस्त होकर अल्लाह के लिए किए जाने वाले जिहाद के मायने समझाए।

यह संग्राम सअद (र0) के क़िताल व जिहाद के जज़्बे के लिए अधूरा साबित हुआ, इसलिए वह जैसे ही इस मुहिम से प्यास का जज़्बा लिए हुए पलटे तो इससे भी बड़ी मुहिम पर बेताबी से रवाना हो गए––उनके सीने में सत्य की गवाही की जो तपन भरी अग्नि रौशन हो चुकी थी, उसने इनको मदीने के शान्तिपूर्ण माहौल में भी चैन से बैठने न दिया। वह तो रुक–रुक कर बेताब हो उठे और इन पराक्रमियों के क़दम–ब–क़दम सर धुनते हुए निकलते जो अल्लाह वालों को हर ख़तरे से बचाने के लिए हर ख़तरे को ढूंढते फिरते थे। इस बार इस ख़तरों से भरी मुहिम की मन्ज़िल मक्का और ताइफ़ के बीच का वह नख़लिस्तान था जहां कुफ़्र और शिर्क के भयावह विशैले नाग

फ़िज़ा में ज़हरनाक फुंकारे छोड़ रहे थे। मौत और विध्वंस के शैतानी जंगल में प्रवेश से पहले मुहिम के सरदार ह0 अब्दुल्लाह (र0) ने इन सत्यनिष्ठ विस्थापितों की तरफ़ रुख़ करके भरपूर सवाल किया।

"कौन आगे जाना चाहता है और कौन पलट जाने का इच्छुक है। आगे वही आए जिसको शहादत जान से भी प्यारी हो। अलग–अलग चेहरों से शहादत की भावना की चमक दिखाई दी। सअद (र0) का चेहरा सबके बीच बेपनाह तमतमाहट की दृष्टि से अपना जवाब आप था। जैसे तमाम मुजाहिदों का गर्म–गर्म खून इस एक चेहरे में सिमट कर अग्निचक्र बन गया हो––उनकी आंखों में एक ऐसी चमक उबल आई जो एक बेहतरीन आरजू की आत्मिक अंगड़ाई से इन्सान के अस्तित्व में विद्युत की लहरें दौड़ा देती है। उनके दिल की उत्साहवर्धक धड़कनें लबों की हिलन तक आईं और एक ज़बरदस्त नार–ए–तकबीर (इश्वर की बड़ाई का उद्घोश) में ढलकर धरती से आकाश तक गरजती चली गईं। "हां!"––ऐ सरदार! हमें शहादत जान से भी ज़्यादा प्रिय है। खुदा की क़सम! इसी मरने की आरजू में जीते हैं हम दीवाने। आप हमें ख़तरों का आभास कराकर डरा रहे हैं––कि इस जज़्बे और जुनून की आग को भड़काये दे रहे हैं। बढ़िए–– कि हमारा खून हमारी रग–रग से फूट निकलने के लिए बेताब है।"

सअद (र) का जिहादी जोश आज उस चरम पर आ पहुंचा था, जहां मर जाने या मार डालने के सिवा कोई तीसरा रास्ता मुमकिन नहीं रहता––लेकिन जिस मुजाहिद से खुदा को कई बड़े–बड़े काम लेने बाक़ी थे भला वह किसी ऐसी–वैसी गली में कैसे काम आ जाता?––देवयोग यह हुआ कि जब यह छोटा सा दल ख़ौफ़ और ख़तरे की घाटी की ओर फैलता बढ़ता चला

तो उनका और उनके साथी अस्बा बिन ग़ज़वान (र0) का ऊंट राह से भटक कर खो गया––और शहादत के मतवाले का अपने क़ाफिले से ऐसा साथ छूटा कि फिर मदीने ही में इनसे मुलाक़ात हो सकी।

जब बदर का वह पहला ऐतिहासिक रण पड़ा जहां अल्लाह वालों की नंगी गरदनें नंगी धारदार तलवारों से लिपट–लिपट कर यह बताने चली कि सत्यता की राह में मौत ज़िन्दगी से कहीं ज़्यादा स्वादिष्ट चीज़ हो जाती है तो जैसे सअद (र0) के अन्दर तेरह साल से सोया हुआ शेर पुरूष जाग उठा। जब पहली बार निहत्थे इस्लाम के समक्ष कुफ़्र एवं शिर्क के शस्त्र–भण्डार खड़े थे––जब पत्थरों और सितारों के असंवेदनशील पुजारियों की शक्ति, वहशत और हिंसा की ताक़त को इकट्ठा किए हुए उन मुट्ठी भर इन्सानों को पीस डालने की सौगन्ध खाती हुआ उन पर टूट पड़ी थी तो सअद (र0) ने इस्लामी सफ़ों(पंक्तियों) के भूखे–प्यासे चेहरों और फटे–पुराने चीथड़ों के बीच से छलाँग लगाई और कुफ़्र के पथरीले सीने पर इस एक "नार–ए–तकबीर" से दरारें डाल दीं––

"सुन लो ऐ दीवानो ! कि अल्लाह सबसे बड़ा है।"––वह बेताब जज़्बा जो पिछले तेरह वर्षों से उनके लहू में डूबा रहा और आंखों ही आंखों में तैर रहा था, आज उमड़ कर उनके बेताब हाथों की राह से तलवार के दस्ते पर आ पहुंचा तो इन्सान ने जैसे संघर्ष का रूप धारण कर लिया। वह बढ़े तो कुफ़्र की लौह पंक्तियों को चीरते चले गए। फ़ौलाद की दीवारें काग़ज की तरह फाड़ डालीं औ कुफ़्र की भरी फ़ौज में घुसकर इसके एक सोने से सजे ताज पर नफ़रत से ठोकर मार दी। खुदा के आगे सरकशी की हिम्मत करने वाला एक घृणित सर कट कर गिरा। यह सअद बिन अल आस का सर था––यह सर गरदन

से उतार कर सअद (र0) हताहत सरदारे कुफ़्र की " ज़ुल कतीफ़ा" नाम की वह मशहूर तलवार छीन कर इस्लामी सफ़ों में पलट कर आए जिसको वह काफ़िर इस्लाम की नफ़रत में ज़हर में बुझा–बुझा कर बड़े हौसलों से जंग के मैदान में लाया था––यह वह तलवार लिये हुए चले तो रास्ते में उनके अपने मुस्लिम सगे भाई ह0 उमैर (र0) की खून में नहाई हुई लाश ने उनका स्वागत किया––लेकिन सअद (र0) यह दृश्य देखकर भी ईमानी सरमस्ती से झूमते हुए चलते रहे। न रुके न कंपकंपाए। वह प्रेमपूर्वक बढ़ते हुए खुदा के रसूल (स0) की सेवा में पहुंचे और कहा––"मैं यह तलवार लेना चाहता हूँ जिसको मैंने बड़े चाव से लूटा और जिसको चलाने की हसरत अभी मेरे दिल में मौजें मार रही है।"

और जब खुदा के रसूल (स0) ने अभी तक माले ग़नीमत के विषय में कोई खुदााई आदेश न होने की बिना पर सअद (र0) की फ़रमाइश पूरी करने से इनकार कर दिया––जब सअद (र0) का सशस्त्र संघर्ष का भाव मायूसी की चोट खाकर पलटा तो एक बार फिर सअद (र0) का खुदा सअद (र0) से पीछे–पीछे पुकारता हुआ आया––कुरआन तलवारों की छांव में नाज़िल हुआ और माले ग़नीमत के आदेश आकाश से धरती पर सअद (र0) का दिल रखने के लिए उतरते चले आए––खुदा के रसूल (स0) ने सअद (र0) को तुरन्त बुलाकर उनकी प्रिय तलवार भेंट कर दी।

उहद की जंग की बाज़ी जब कुफ़्र के दूसरे हमले से नहीं––बल्कि हक़ीक़त में खुद कुछ मुसलमानों की चूक से इस्लाम के ख़िलाफ उलट गई और जंग का मैदान अच्छा–ख़ासा हश्र का मैदान बन गया। जब खुदा को पहचानने वाली ताबनाक नज़रें थोड़ी देर को इस तरह विकृत और निलंबित

हुईं कि इन्सान तक को पहचानना दूभर हो गया––जब सत्यवादियों की तलवारों से सत्यवादियों की कितनी ही गरदनें कट गईं––हां उस वक़्त अगर तलहा (र0) जैसा पराक्रमी सीना तान कर दुश्मनों के तीर पर तीर खा रहा था तो सअद इब्ने अबी वक़ास (र0) जैसा जांबाज़, मुहम्मदे अरबी (स0) की प्रिय जान को अपनी घायल जान की आड़ में लिए हुए मुहम्मद (स0) के दुश्मनों पर इस बेजिगरी से तरकश खाली कर रहा था जैसे बता रहा हो कि––"मेरे पीछे तुम जिस "मुहम्मद (स0) को देख रहे हो , वह अकेला नहीं, स्वयं खुदा भी उसके साथ मेरी कुमक पर है––फिर कौन है जो मुझे इस वक़्त हरा सके।"

हमलों की बाढ़ ज्यों–ज्यों तेज़ हो रही थी, सअद का तरकश खाली हो रहा था––लेकिन जैसे–जैसे तरकश खाली हो रहा था, सअद (र0) के जुनून व जज़्बे के तेवर कुछ और भूकम्पकारी होते जा रहे थे––और उसका यह अटल विश्वास ठाठें मारता हुआ बढ़ रहा था कि तीर खत्म हो जायेंगे लेकिन मेरे खुदा की अदृश्य शक्ति कभी समाप्त नहीं हो सकती।

इस माहौल में जब कुफ़्र की सात सौ फ़ौलादी कवचों की सियाह टुकड़ी––तीन हज़ार ऊंटों का उमड़ता चढ़ता हुआ झुन्ड––दो सौ घोड़ों की आंधियां उड़ाती हुई भयानक टापें––और पांच हज़ार खूंख़ारों का कुफ़्र उड़ाता और खून थूकता हुआ वहशी टोला एक साथ मुहम्मद (स0) पर तोल कर टूटा पड़ता था। जब एक हज़ार सत्यनिष्ठ मुजाहिदों की प्राण–वायु खुदा के आख़री पैग़म्बर अपने एक हज़ार बाहुबलि पराक्रमियों से बिछुड़ कर इस तूफ़ानी चढ़ाई के निशाने पर खड़े थे। इस वक़्त सअद (र0) की भीषण तीरन्दाज़ी विशेषज्ञता के वह तेवर दिखा रही थी कि काफ़िरों की ज़बानें तीर खा–खाकर कुत्तों की तरह बाहर लटकी पड़ती थीं––अकेले

खुदा की असीम ताक़त पर भरोसा करने वाले मुकम्मल इन्सान––ह0 मुहम्मद (स0) के होंठों से सअद (र0) को दाद पर दाद मिल रही थी।

"या सअदारम – फिदाकः अबी व उमी!!"––ऐ सअद! तीर मार!––मेरे मां–बाप तुझ पर निसार!––यह हुज़ूर (स0) की आवाज़ थी।––यह सअद (र0) की ईश्वर–परायणता किन बुलन्दियों पर पहुंच रही थी कि खुदा का रसूल (स0) इस तरह पुकार उठा।–– और यह पुकार सुनकर सअद (र0) को लग रहा था जैसे उनके पूरे अस्तित्व में सारी कायनात की शक्ति उबल–उबल कर सिमट आई है––खून के एक–एक क़तरे से जज़्बात के सैकड़ों ज्वालामुखी फट पड़ने के लिए बेताब थे। सअद (र0) ने इस आवाज़ पर तरकश में हाथ डाला तो इसका आख़री तीर–– बे फल का टूटा–फूटा तीर हाथ आया–– सअद (र0) की सारी ज़िन्दगी गरमाकर उसी एक तीर में समा गई और यह तीर कुछ इस तरह चलाया कि पांच हज़ार खूंख़ार सूरमाओं की भीड़ में आगे बढ़ने वाला दुश्मन तीर खाकर इस तरह बौखलाया कि नग्न होकर ज़मीन पर ढेर हो गया––मौत और विध्वंस की मंझधार में हक़ के मुजाहिद की यह महारत देखकर हुज़ूर (स0) इस क़दर मुस्कुराए–– इस क़दर मुस्कुराए कि चमकदार दांतों के मोतियों की पूरी लड़ी दिखाई देने लगी।

हाय मौला!––कैसा था वह तेरा बन्दा––तेरा प्यारा रसूल (स0) जिसकी विश्वास से भरी मुस्कान ख़तरे और ख़ौफ़ की घटाटोप अन्धयारी में चाँद–सूरज को शरमाए देती थीं।––और कैसे थे उस पर वह ईमान वाले जो उसके तबस्सुम की रौशनी में अपनी ज़िन्दगी के एक महा उन्माद से मौत के लश्कर को बदहवास (हतबुद्धि) किये डालते थे।––हां जिनको खुदा के सिवा किसी का भी तो डर न था!!

सअद इब्ने वक़ास (र0) की जांनिसारियां यूं ही जिहाद से जिहाद तक गरजती कड़कती–बढ़ती ही रहीं––बदर व उहद के मोर्चों से निकले तो मक्के की विजय तक यह बिजली चमकती चली गई––मक्के की विजय से आगे बढ़े तो हुनैन के ग़ज़वे में तीरों की भयावह आंधी पर बाज़ की दृष्टि जमाए हुए वह इस समय भी पहाड़ की तरह डंटे हुए थे। जब हज़ारों मुसलमानों के क़दम एकदम उखड़ते चले गए। हुनैन की जंग से उभरे तो ताइफ की जंग में घन–गरज बनकर लपके, और वहां से पलटे तो देखा कि "तबूक" की कांटों भरी –– शोलों की सड़क पर पाँव में छाले डाले हुए हर तरह बढ़ रहे हैं जैसे कोई फूलों की सेज पर कोमल चाल के मज़े लूट रहा हो।

लेकिन तेईस साल तक पैरों के छालों और जान की बाज़ी लगाने वाले रण जीतने के बाद भी उन्हें यही महसूस हुआ करता जैसे अभी तो वह कुछ चले ही नहीं।––कैसी होती होगी रज़ाए इलाही की वह रूहानी प्यास जिसने बन्दों के खून को इस तरह पारा बना दिया था कि जब तक शरीर में लहू की एक छींट भी बाक़ी रही, उनके दिलों को चैन न आया––!

सन् 10 हिजरी में––हज्जतुल विदा (रसूल स0 का अन्तिम हज) में सम्मिलित न हो पाने पर सीना सिपर रहने वाले ह0 सअद (र0) जब पवित्र मक्के में रोग–शय्या की सिल्वट बने पड़े थे। जब हुजूर (स0) ने वापस आकर उनके पास तशरीफ़ लाकर उनका हाल पूछा तो बन्दगी के कर्तव्य के प्यासे सअद (र0) के होंठों से बीमारी के दुःख–दर्द की कोई कराह निकलने के बजाय किसी और ही हसरत के आंसुओं से आंखें छलक गईं।

"ज़िन्दगी शायद ख़त्म होने को है, ऐ खुदा के रसूल (स0)––और आप (स0) के सअद का फ़र्ज़ अभी तो ज्यों का त्यों बाक़ी है––खुदा के लिए अनुमति दीजिए कि वह बेबस बन्दा जो अब जान से जिहाद नहीं कर सकता, अपने माल से ही जिहाद का हौंसला निकाले।"

"क्या चाहते हो––ऐ सअद (र0)?" हुजूर (स0) एक मृदुल मुस्कान के साथ कुछ और क़रीब आ गए और उस इन्सान पर अपनी चुम्बकीय निगाहें जमा दीं जिसकी आंखों में उसका दिल खिंच कर आ गया था।

"हुजूर!––मेरी कोई नर औलाद नहीं––तो फिर मैं क्यों न दो तिहाई माल व दौलत मौला की राह में लुटाता चलूँ।"

"नहीं नहीं ऐ सअद(र0)!" हद से बढ़ी हुई त्याग भावना को हुजूर (स0) ने कृपा और विवेक से थपकी देते हुए रोका। लेकिन इस दिलासे के बाद भी सब कुछ लुटा देने का छलकता हुआ जज़्बा सन्तुष्ट नहीं हुआ––बच्चों की तरह गिड़गिड़ाने लगे बीमार सअद (र0)।––अच्छा––ऐ खुदा के रसूल (स0)!––बस आधा माल लुटाने दीजिए––सिर्फ़ आधा!!––

"नहीं"––हुजूर के शब्दों में सअद (र0) की बन्दगी की निष्ठा और मुस्कान भरी सहानुभूति थी।" "देखो सअद (र0) अपने बाल–बच्चों को ग़रीब और लाचार छोड़ जाने से कहीं ज़्यादा बेहतर है कि तुम उन्हें मालामाल छोड़कर खुदा के पास जाओ ताकि वह ज़िन्दगी की भीख मांगते न फिरें––अच्छा–अच्छा!––जाओ एक तिहाई माल अपने मौला की राह में लुटा दो तुम!–– मत सोचो कि बीवी–बच्चों का ध्यान रखने से तुम परमेश्वर को राज़ी करने का कोई हिस्सा

खो बैठोगे––जानते हो?––बीवी के मुँह में जाने वाला हर निवाला तुम्हारे लिए आख़रत का एक सामान है।"

यूँ सअद (र0) के बेक़रार दिल को दौलत की तरफ़ से सुकून मिला तो वतन के त्यागने की समस्या जाग उठी। वह मक्के में बीमार पड़े थे। वही मक्का––हां वही प्यारा वतन जिसको एक बार और हमेशा के लिए इश्वरीय इच्छा के संकेत पर निसार कर चुके थे। यह सोचकर प्रिय वतन की सुहानी फ़िज़ाएं उनको परदेस से ज़्यादा डसने और काट खाने को दौड़ने लगीं। बीमारी बढ़ रही थी और यह उम्मीद दम तोड़ रही थी कि शायद वह एक बार फिर उसी मदीने में जाकर जीने और मरने की दिली हसरत दिल ही दिल में ले जायेंगे––जो उनका शारीरिक नहीं रूहानी वतन बन चुका था। सहनशीलता के तटबन्ध उस समय टुकड़े–टुकड़े हो गए जब ऐसी हालत में हुज़ूर उनका मिजाज़ पूछने के लिए तशरीफ़ लाए। हुज़ूर (स0) को देखना था कि सहनशीलता के चरम पर पहुंचने से उनकी घुटी हुई चीख़ निकल गई और वह तकिये में मुँह देकर सिस्कारियां भरने लगे–––"अब.....अब क्या होगा ऐ ख़ुदा के रसूल (स0)! क्या इसी धरती की मिट्टी लिखी है जिसको ख़ुदा और रसूल (स0) की मुहब्बत में कुर्बान करके मैं कैसा ख़ुश हुआ करता था।

यह हिचकियों और सिसकियों में उलझते कांपते और टूटे हुए लफ़्ज़ सुनकर हुज़ूर (स0) का दिल भर आया और आप (स0) ने सचमुच बेताब होकर अपना पावन हाथ सअद (र0) के फड़फड़ाते हुए सीने पर रखकर बेतहाशा ख़ुदा को पुकारा।
"मेरे अल्लाह! सअद (र0) को शिफ़ा (आरोग्य) दे। मेरे अल्लाह! सअद (र0) को शिफ़ा दे––मेरे अल्लाह! सअद (र0) को शिफ़ा दे!!"

सअद (र0) को महसूस हुआ जैसे इस मुक़द्दस हाथ की छुवन से ख़ुदा की रहमत का ठन्डा–ठन्डा अमृत उनकी अल्प–जीवित धड़कनों पर शबनम बरसा रहा है––दिल व जिगर में दुआ की हूक से ठन्डक सी पड़ती चली गई और फिर हुज़ूर की इस शुभ सूचना तो जैसे उनके सहमे हुये दिल को फिर से शेर कर दिया––" नहीं ऐ सअद (र0)! तुम उस वक़्त तक नहीं मरोगे जब तक तुम से एक क़ौम को नुकसान और दूसरी क़ौम को नफ़ा न पहुंच ले।"

उस समय सअद (र0) कुछ न समझे थे कि इस भविष्यवाणी का विस्तार क्या है? लेकिन इराक़ और क़ादसिया के सैन्य अभियान की कमान उनको अता हुई और अरब ने अजम को निर्णायक पराजय दी तो उनको पता चला कि हुज़ूर (स0) ने क्या इरशाद फ़रमाया था?"

इराक का वही महासंग्राम जहां ह0 अबू उबैदा (र0) जैसे मुजाहिद काम आ चुके थे––जहां मसना शेबानी के आठ हज़ार जियालों को जीत का कुछ सुराग़ न मिला था––सवाल था कि कौन इस भयभीत करने वाले ख़तरों के मोर्चे पर उछाल लगाने के योग्य हो सकता है आख़िर? ह0 उमर बिन ख़त्ताब (र0) की ख़िलाफ़त के दरबार में उम्मत के बड़े–बड़े दिल व दिमाग़ इसी सवाल की उधेड़–बुन में गुम थे कि अचानक ह0 अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (र0) की उत्साहवर्धक आवाज़ ने फ़िक्र में डूबे हुए सरों को चौंका दिया।

"पा लिया!––पा लिया!!––मैंने पा लिया!!!"

"कौन?––किस को पा लिया आख़िर?"एक साथ कई ज़बानों पर यह हैरत भरा सवाल आ गया।" कौन है वह जांबाज़! जो इस मुश्किल पहाड़ को उठा लेने की योग्यता रखता है?"

"सअद इब्ने अबी वक़ास (र0)!" ह0 अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (र0) चिल्लाए और सटीक चुनाव पर गौरव और खुशी की एक नशीली चमक से उनकी आंखों में नूर के दिये जल उठे। अचानक सुनने वालों के सीने में अति उत्साह का तूफ़ान सा उठ खड़ा हुआ और नार–ए–तकबीर की फ़लक़ चीरने वाली गूंज में कितनी ही ज़बानों पर ताईद मचल उठी। "बेशक–तुम ने सच पा लिया अब्दुर्रहमान (र0)––सअद (र0) के शानों में वाक़ई इतना कस–बल है कि वह इस पहाड़ सी ज़िम्मेंदारी का हक़ अदा कर सकता है।––"

यूँ इस मुजाहिद के पराक्रमी नेतृत्व का शानदार दौर शुरू हुआ। तीस हज़ार मुजाहिदों के टिड्डी दल पर कड़ी नज़रें जमाए हुए यह हक़ का बन्दा आगे चला तो उसकी बन्दगी की विनम्रता से छूकर जंग की यह पथरीली वादी पानी–पानी हो गई। ठीक उसी वक्त जब शिएटिका(कटिक्षेत्र रोग) का हड्डी तोड़ देने वाला दर्द उनको निचोड़े डालता था, वह सेना की पंक्तियां ठीक कर रहे थे––जंग के ख़तरनाक नक़्शों पर झुके हुए खूने दिलो जिगर से जिहाद के एक महान रेखाचित्र में रंग भर रहे थे। जिस्म का दर्द, रूह की पीड़ा में दब कर गुम हो चुका था––खुदा के रसूल (स0) की उम्मत का दर्द शिएटिका के दर्द पर छाया हुआ था। नहीं! वह केवल मुसलमानों ही के लिए दर्द भरा दिल लिये हुए नहीं था––उसको तो खुदा के पूरे कुटुम्ब––सारी मानवता का ग़म सता रहा था। वह गरदनें अलग करने से पहले बेचैन था कि जिसके सिवा कोई आस्ताना मानव के सजदा करने के लायक़ ही नहीं है––उसने बार–बार

यह कोशिश की कि सत्य और असत्य की जंग का फ़ैसला तलवारों के बजाय दिल की धड़कनें कर सकें––बार–बार उसने आह्वान–दल ईरानी हुकूमत के पास रवाना किए––वह बार–बार पुकार उठा कि–– "ऐ लोगो! खुदा की क़सम हम तुम्हारे मुल्क के भूखे नहीं––खुद तुम्हारे लिए आसमानी जन्नत की कुन्जियाँ लेकर तुम्हारे पास आने के लिए बेताब हैं।"

लेकिन जब हक़ की आवाज़ ने पथरीले दिलों पर असर न किया और इस ईमानी पीड़ा के जवाब में रुस्तम की यह हैवानी चिंघाड़ सुनाई दी कि "कल तुम्हारी सेनाओं को ध्वस्त कर डाला जायेगा तो मानवता के दर्द से सुलगते हुए सअद (र0) में ग़ैरते तौहीद का वलवला जाग उठा और नार–ए–तकबीर के आकाश भेदी जोश के साथ सअद (र0) ने जंग की ललकार स्वीकार करते हुए मुजाहिदों से कहा ––

"ऐ इस्लाम के जियालो!––उठ खड़े हो और हक़ के दुश्मनों पर होश और जोश की दलील पूरी कर दो।"

जिहाद का सैलाब तीखा और तीव्र लिए हुए सअद (र0) कुछ इस तरह बढ़े कि ईरानी साम्राज्य तिनकों की तरह बह गया। क़ादसिया पर फ़तह हुई, बाबुल क़दमों पर गिरा––क़ौसा की वह ऐतिहासिक बस्ती ख़त्म हुई जहां नमरूद ने कभी इब्राहीम (अ0) को बेड़ियों में जकड़ने की कोशिश की थी––मदाइन की ओर रुख़ किया और ईरानियों ने दजला के पुल उड़ा दिये तो सअद (र0) मुजाहिदाना ललकार उठे।

"कूद पड़ो दरिया में ऐ खुदा के जांबाज़ों!–– कूद पड़ो।" यह कहा और समन्दर में घोड़े दौड़ाते हुये इस तरह आगे बढ़े कि ईरानी सिपाही भयभीत दशा में चीख़ उठे––"देवहा आमदन्द––

देवहा आमदन्द!"––जिन्न आ गए! जिन्नात आ गए। लेकिन वही इन्सान जिसकी कमान में गरजते चमकते पराक्रमियों पर देवों और जिन्नों का शक होता था––हाए वह कितना बड़ा इन्सान था। ठीक उस समय जब उसके हाथों में पहाड़ों की विलायत नज़र आ रही थी। उसकी आंखों में खुदा की पहचान का बोध और सीख लेने के सलीक़े ने पीड़ादायक आंसुओं से दिये रौशन कर दिये थे––हारे हुए मदाइन की समर्पण करने वाली नगरी को ख़ामोश और सहमा हुआ देखकर उसको एक लम्हे के लिए भी बाहुबल पर घमण्ड करने की मोहलत न दी उसकी ईश्वर भक्ति ने !––यह कुरआनी आयतें उनके लबों पर आ गईं। "किस क़दर बाग़, झरने (खेतियां) और भांति–भांति के विलासितापूर्ण महल छोड़कर (पिछली क़ौमें) चल दीं जिनमें वह खुशहाल ज़िन्दगी गुज़ारते थे और हमने उन चीज़ों का मालिक दूसरी क़ौमों को बना दिया।"

दुनिया केवल यह दृश्य देख रही थी कि सअद (र0) की तलवार किसरा के सुनहरी महल, ताज व तख़्त पर कौंदती–लहरती इस्लामी ख़िलाफ़त के मानचित्र में नित नए शहरों को जोड़ रही है। धन–दौलत का सैलाब अजम से अरब की दिशा में तेज़ी से अग्रसर है। लेकिन सअद (र0) खुद अपने अन्दर झांककर यह मंज़र देख रहे थे कि ज्यों–ज्यों जिहाद के कर्तव्यों का बोझ हल्का होता जा रहा है, उनका अस्तित्व दरवेशी और परित्याग की एक निराली तड़प में ढलता जा रहा है––महलों और क़िलों के लौह दरवाज़े उनके सामने खुल रहे हैं––सत्ता और वैभव की पताकाएं उनके व्यक्तित्व पर लहरा रही हैं, लेकिन इन सब विजयी कारनामों के साथ–साथ खुदा का ख़ौफ़ और आख़रत की दर्द भरी याद उनके पूरे जीवन को दुनिया से दूर––बहुत दूर तेज़ी से खींचे लिए जा रही है। यही था वह दर्दे दिल जिसने तलवार से भी बड़ा काम किया––शस्त्रों ने

केवल अजम (अरब से बाहर) की ज़मीन जीती थी और इस तपिश ने अग्नि पूजकों के सीनों में तौहीद (एकेश्वरवाद) की आग कूट–कूटकर भर दी। ज़मीन पर विजय के बाद दिलों की दुनिया पर फ़तह पाई सअद (र0) ने। हथियारों की घन–गरज देखकर अजमी सेना ने हथियार डाले थे और सअद (र0) के ईमान की तड़प देखकर उन लोगों ने अकेले खुदा के क़दमों पर बेताबी से सर डाल दिये––बड़े–बड़े सरदार हक़ की गवाही देते हुए इस्लाम की तरफ़ अपार जोश के साथ बढ़े––वेलम के चार हज़ार सैनिकों ने एक ही बार में एक साथ इस्लाम की महानता के सामने सर झुका दिया।

सअद (र0) की राह में संसार की माया से लापरवाही और दिल की दौलत की बढ़ती हुई तड़प इस तरह बढ़ी कि उनकी रग–रग से फूट निकली––माहौल में धूल मिल गई। आंखों से नज़र आने लगी। दुनिया ने एक दिन यह अद्भुत दृश्य भी देख लिया कि अमीर–उल–मोमिनीन ह0 उमर (र0) का एक दूत कूफ़े में दाख़िल हुआ और सअद (र0) के घर की बाहरी दीवार को आग लगाकर चला गया––और सअद (र0)––वही सअद (र0) आज्ञापालन और विनम्रता के साथ ठन्डे दिल और खुली आंखों से यह सब कुछ देखते रहे। जिन्होंने ईरानी साम्राज्य की बिसात उल्टी थी और जिन्होंने कूफ़े को आबाद करके घर के आगे यह डेयोढ़ी बस इसलिए बनवाई थी कि बाज़ार के शोर–गुल से सुरक्षित होकर सुकून से रह सके––लेकिन जिसको अमीर–उल–मोमिनीन (र0) ने केवल इस दूरदर्शिता के मद्देनज़र आग के हवाले करा देना ज़रूरी समझा कि कहीं यह डेयोढ़ी शासक और शासित क़ौम के बीच इन्साफ़ और अद्ल के रास्ते में रुकावट न बन जाए। सत्य और न्याय का हर हल्के से हल्के दूर का हित भी सअद (र0) को अपनी विजयी–पराक्रमी संघर्ष की पूरी उम्र से भी ज़्यादा प्यारा था––उन्होंने नतमस्तक होकर इस परामर्श को सीने से

लगा लिया और व्यक्तिगत सम्मान एवं प्रतिष्ठा की हर जायज़ मांग से अलग हो गए––यही नहीं हुआ बल्कि यह भी हुआ कि कूफ़े के कुछ ज़ाती विरोधियों ने केवल विरोध के लिए ख़िलाफ़त के दरबार में ह0 सअद (र0) के ख़िलाफ़ यह शिकायत भेजी कि वह नमाज़ ठीक ढंग से नहीं पढ़ाते।––सअद (र0) ने इस शिकायत को अत्यन्त धैर्यपूर्वक सुना। ख़िलाफ़ती दरबार से इस शिकायत की छान–बीन के लिए ह0 मुहम्मद बिन मुस्लिम (र0) कूफ़े से आये और घर–घर, मस्जिद–मस्जिद इस शिकायत के विषय में जनता की टिप्पणियां नोट करते रहे। सअद (र0) ने इस न्याय प्रक्रिया को भी खुदा के एक विनम्र बन्दे की शान से देखा और सुना––और फिर केन्द्र के एक इशारे पर उन्होंने इन तमाम इलाक़ों के प्रशासन को त्याग दिया जिनको उन्होंने दिल और जिगर के खून से जीता और आबाद किया था––वही मुजाहिद जो अपने हैरतनाक दृढ़ निश्चय और आचरण के साथ सेनापति के पद और शासन की बुलन्दियों तक पहुंचा था। जब खुदा ने चाहा कि वह इन ऊँचाईयों को कुर्बान कर दें तो दुनिया ने देखा कि इसने अपना पूरा जीवन इस्लाम के क़दमों पर डाल दिया और सल्तनत व शासन के सिंहासन से उठकर फ़क़्र और त्याग के कोने में सिमट गया।

उनकी ज़िन्दगी में "जिहाद" और "मैं" के ख़िलाफ़ जिहाद की यह बेपनाह बड़ाई वह चीज़ थी जिसको ह0 उमर बिन ख़त्ताब (र0) ने उस समय श्रद्धान्जलि प्रस्तुत की जब वह क़ातिलाना घाव खाए हुए शहादत के बिस्तर पर लहू में नहाए हुए लेटे थे। उन्होंने एलान फ़रमाया कि "मैंने सअद (र0) को कदापि किसी घोटाले में निलम्बित नहीं नहीं किया गया था।" यह कहा और ख़िलाफ़त के योग्य सहाबियों (र0) की सूची में ह0 सअद इब्ने अबी वक़ास (र0) का सम्मानित नाम शामिल करके दुनिया को बताया कि यह हस्ती केवल कूफ़े के शासन के लिए ही

नहीं, बल्कि पूरी इस्लामी ख़िलाफ़त पर राज करने के क़ाबिल थी।

लेकिन ह0 सअद (र0) ने जब ज़माने के यह तेवर देखे कि इस्लाम के हर क्षितिज से ख़तरनाक उपद्रवों के तूफ़ान सर उठा रहे हैं और ख़तरा है कि मुसलमानों का खून इन मतभेदों की भेंट न चढ़ जाए तो वह ताजो–तख़्त के प्रस्ताव से दामन बचाकर फ़क्र, बेनियाज़ी व उदासीनता की तन्हाइयों में सिमटते चले गए––सिमटते चले गए, यहां तक कि खुद उनके सुपुत्र पुकार उठे।

"अब्बाजान! यह क्या हो रहा है आपको!––आप जंगल में ऊंट चराएं और––लोग सत्ता के सिंहासन के लिए क़िस्मत आज़माएं।"

"ख़ामोश!" जोश के साथ ह0 सअद (र0) ने बेटे के सीने पर हाथ मारा––"मैंने खुदा के रसूल (स0) से सुना है कि खुदा बेनियाज़ और परहेज़गार (इन्द्रियों को वश में रखने वाले) बन्दे को प्यार करता है––फिर किसी ने छेड़ा तो अलग–थलग रहने के राज़ पर यूं नक़ाब उठाया कि "मैंने खुदा के रसूल (स0) से सुना है कि निकट भविष्य में मेरे बाद एक उपद्रव होगा जिसमें सोने वाला बैठने वाले से, बैठने वाला खड़े होने वाले से और खड़ा होने वाला चलने वाले से अच्छा होगा।"

इस तरह वह तलवार जिसने अरब व अजम की रक्तरंजित लड़ाईयों में कुफ़्र व शिर्क के सर क़लम किये थे, मोमिन के खून की कल्पना से कंपित होकर हमेशा के लिए नियाम में चली गई और वह महान पराक्रमी जिसकी सत्तर साल से ज़्यादा लम्बी ज़िन्दगी का हर साँस जंगो जिहाद के रणक्षेत्रों में

बीता था, आख़िर दुनिया के परीक्षा स्थल से सफलता के साथ दूर निकलकर क़ब्र की राह से गुज़रता हुआ अपने सृष्टा और मालिक से इस तरह जा मिला कि उसके जिस्म पर बदर की जंग का वह फटा पुराना ऊनी कपड़ा कफ़न के रूप में लिपटा हुआ था जो अल्लाह के रसूल (स0) ने तबर्रुक (महात्मा से मिला प्रसाद) के तौर पर उनको अता किया था–– उनके वह हाथ खुदा की रहमत के लिये फैले हुये थे जिन्होंने दुनिया की दौलत के ख़ज़ानों को जीते जी लुटा दिया था और उनके दिल में खुदा और खुदा के रसूल (स0) के सिवा किसी के लिये कोई जगह न थी।

हमसे इतिहास कहता है कि यह संघर्ष और बलिदान की गाथाएं तुम्हारी हैं––लेकिन हमारा हाल यह है कि अब यह दास्तानें लिखना तो क्या, इनको पढ़ना भी याद नहीं रहा हमको।––अपने भविष्य के अन्धकार में ठोकरे खाते हुए हम खुद अपने अतीत की उस रौशनी से दूर से दूर होते जा रहे हैं––बुझे हुये दिल, बे नूर आंखें और चकराये हुए दिमाग़ लिए आख़िर हम किधर बहते चले जा रहे हैं?––अन्ध्यारों के तूफ़ानी थपेड़े हमला करते हुये चीख़ते हैं––"क्या तुम मुसलमान हो?"–– दुनिया हमारी तबाही पर ठहाका लगाकर पूछती है––"क्या यह मुसलमान हैं?"––लेकिन हाय हमारा हाल––कि हम खुद अब भी यह सोचने की ज़रूरत नहीं समझते कि "क्या हम मुसलमान हैं?"

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

og fu’kkus ltnk tks jkS’ku Fkk dkSdc dh rjg
gks xbZ gS bl ls vc ukvk’kuk rsjh tcha

18

जवानी और त्याग–बलिदान

जवानी में यह दुनिया बहुत ख़ूबसूरत नज़र आती है–जवानी इन्सान को इस दुनिया में जीने पर लुभाती और उकसाती है––

लेकिन कितनी ख़ूबसूरत थी ह0 मुसअब बिन उमैर (र0) की जवानी जो दुनिया पर नहीं, आख़रत पर न्यौछावर हुई।––उन्होंने औरत से नहीं, खुदा से इश्क़ किया। वह यौवन, कविता और आकर्षण से भरपूर दुनिया पर नहीं, खुदा के रसूल (स0) पर ईमान लाए थे। इस ईमान से पहले वह कुछ और थे––ईमान लाते ही कुछ और हो गए।––अभी थोड़ी देर पहले तक धन–दौलत की नशीली छाँव में और माँ की ममता की घनी छाया में वह ज़िन्दगी के दिलफ़रेब और ईमान को ध्वस्त करने वाले मार्ग पर इस तरह आगे बढ़ रहे थे कि ज़िन्दगी से हटकर और मौत के उस पार तक कुछ सोचने का कोई सवाल ही नहीं था। वह यौवन और सौन्दर्य पर नाज़ करते हुए अपने उत्तम लिबास की इत्र में डूबी सरसराहट से मक्के के गली–कूंचों को महकाते हुए––जिधर से गुज़रते, मक्के की बालाओं की नज़रें उन पर जम कर रह जाती होंगी। भला कौन कभी यह सोच भी सकता था कि इसी नौजवान की दुनिया में ऐसा महान इन्क़िलाब आने वाला है जब उसके अस्तित्व पर खुदा के चयन की दृष्टि पड़ रही होगी। जब ऐशो–आराम के बजाय दुःख–दर्द इसे प्यारे होंगे––निर्मल और इत्र में डूबे कपड़ों को छोड़कर चीथड़े लगाने में इसे आनन्द आएगा। ज़िन्दगी और दुनिया के मज़ों पर झूमने के बजाय वह सत्य

और परलोक पर मर जाने की आरजू करेगा ताकि उसकी मौत पर धरती व आकाश रोएं और खुदा खुश हो कि उसका बन्दा उसके द्वार तक आ पहुँचा।

ह0 मुहम्मद (स0) ने इनसे इनके वास्तविक खुदा का परिचय कराया, ह0 मुसअब बिन उमैर (र0) की आंखों पर से दुनिया के सारे हसीन परदे उठते चले गए और आख़रत पूरे हुस्न के साथ उनके सामने आ गई।

आख़रत———जिसके यक़ीन से वंचित होकर कोई बड़े से बड़ा इन्सान चाहे और सब कुछ बन जाए मगर "इन्सान" नहीं बन सकता।

आख़रत——जिस पर अटल विश्वास इन्सान को जीना भी सिखाता है और मर जाना भी।

आख़रत——जिससे जन्नत की सुगन्ध आती है तो इन्सान इस दुनिया में ज़ख्मों की माला पहनकर भी——कांटों में उलझ कर भी——अंगारों पर पैरों के छाले लिए चल कर भी इस तरह मुस्कुराता है जैसे यह शूल नहीं फूल हों। घाव नहीं मरहम—— शोले नहीं रंग–बिरंगी फुलवारी हो।

अपने दिल से तमाम बुतों को निकालकर इसमें सच्चे खुदा की याद बसाने के बाद जब ह0 मुस अब बिन उमैर (र0) ने अपने चारों ओर नज़र डाली तो देखा कि सत्य और असत्य में मौत और ज़िन्दगी का संघर्ष हो रहा है। खुद उनके अपने घर में उनकी मां ——उनकी बेहद चाहने वाली मां पत्थर के झूठे खुदाओं के आगे अपनी नाक रगड़ रही थीं। उनका दम घुटने लगा——मगर उन्होंने अपने होंठ सी लिए। अपने दिल में

सुलगती हुई यथार्थ की अग्नि को अपनी चुप्पी के दामन में समेट लेना चाहा––और आख़िर––आख़िर उनका दामन जलने लगा और हक़ीक़त खुद ही दुनिया के सामने आ गई।

उनको दुनिया ने इस हालत में देख लिया कि वह अनदेखे मगर हर चीज़ को देखने वाले खुदा के आगे सजदे में पड़े हुए मानव के दुर्भाग्य और "आत्मघात" पर आंसू बहा रहे हैं।

"यह तुम क्या कर रहे हो?" उनकी मां ने वहशत भरी आंखों से इस तरह देखा जैसे वह दुनिया का सबसे बड़ा जुर्म करते हुए रंगे हाथों पकड़ लिये गए हों। "मैं खुदा को सजदा कर चुका हूँ जो वास्तव में खुदा है।" उन्होंने पूरे साहस और सत्य निष्ठा के साथ हक़ का एलान किया.....".मेरी मां खुदा के सिवा कोई खुदा है ही नहीं और मुहम्मद (स0) उसके सच्चे रसूल हैं।"

"बस"!––बस कर!!" उनकी मां को असत्य के जुनून ने अचानक नफ़रत की आग का घेरा बना दिया और––मां और बेटे के बीच झूठ और सच्चाई की वह भीषण लड़ाई ठन गई जो खुले रिश्तों की महाधमनियां तक काट डालती है––जब मुहब्बत और नफ़रत की भावनाएं जीवन के कोने–कोने से सिमट कर सिर्फ़ एक मोर्चे, केवल एक धुरी पर गर्दिश करने लगते हैं।–– "झूठ और सच्चाई!" यही होती है वह पीड़ादायक और यथार्थ की परिस्थिति जहां इन्सान को एक बार यह फ़रेब से भरी दुनिया अपनी तमाम अपवित्र साज़िशों और धोखेबाज़ियों के साथ बिल्कुल नंगी नज़र आती है––जहां खुदा का बन्दा यह देखकर अचरज में रह जाता है कि हक़ीक़त में बन्दा और पूज्य (परमेश्वर) ही दो वास्तविक हमराही हैं––और यह कि दुनिया के तमाम सहारे जो सहारे नज़र आते हैं, इस दुनिया का सबसे

जानदार छलावा हैं––क़िले नहीं रेत की दीवार हैं जिनको कभी–कभी हालात का एक ही तेज़ झोंका धूल बनाकर उड़ा देता है। परीक्षा के इसी तूफ़ानी मोड़ पर असली ईमान निफ़ाक़ (पाखण्ड) को गर्द बनाकर उड़ा देता है। यहां अल्लाह से प्रेम के नक़ली और खोखले दावे नहीं चलते––एक क़दम नहीं चलते––धड़ाम से मुंह के बल आ जाते हैं।

सत्य निष्ठा के आकाशभेदी उद्घोष क्रूर असत्य की पहली ही झिड़की में मिमयाने लगते हैं––मगर हां! यही वह मोड़ होता है जहां वास्तविक ईमान की दबी हुई चिंगारी इन्सान के अन्दर से ज्वालामुखी बनकर फट पड़ती है और बातिल के पूरे लश्कर को इसके तमाम षड़यन्त्रों के साथ अपनी सुर्ख़ व झुलसाती राख में दफ़न करके छोड़ती है। इस मोमिन की बेकसी (असमर्थता) ही उसकी सबसे बड़ी ताक़त बनती है। इसका असहाय और वंचित होना ही इसको इस तरह सशस्त्र करता है कि अकेला सिपाही यह महसूस करता है कि वह एक ही वक़्त में पूरी दुनिया से तन्हा ही जंग कर सकता है–– जंग कर सकता है और कदापि पराजित नहीं हो सकता है––इस लिए कि बातिल ज़्यादा से ज़्यादा यह कर सकता है कि उसकी गरदन काट डालने की कोशिश करे––लेकिन उसकी गरदन कट तो सकती है, बातिल के आगे झुक नहीं सकती।

और एक ही छलांग में ह0 मुसअब बिन उमैर (र0) इसी बुलन्दी तक जा पहुंचे थे।

उनको मुहब्बत और हमदर्दी की आंच से पिघलाने के प्रयास किये गए मगर वह एक चट्टान साबित हुए। उनको भोग–विलासिता के बदले ख़रीद लेने के जाल डाले गए मगर वह इस कोशिश पर नफ़रत से मुस्कुराए और दर्द के साथ

दुनिया के हाल पर रोए–––उनको ग़रीबी और असहाय होने से डराया गया मगर आख़रत की भयानक दुर्दशा और हलाकत के भय ने दुनिया के हर ख़ौफ़ और ग़म को पीस डाला और––ठीक उसी वक़्त खुदा ने इस नौजवान बन्दे के दिल पर 'दिल की दौलत' के अथाह ख़ज़ानों का मुंह खोल दिया। वह सारी दुनिया से दामन झाड़कर उठे–– मां को छोड़ दिया––घर छोड़ दिया––अपने क़ीमती लिबास छोड़ दिये–– स्वादिष्ट खानों के दस्तरख़ानों से उठ गए––वतन छोड़ दिया–– एक खुदा के लिए सारी दुनिया को छोड़ दिया––वह उठे और हुजूर (स0) की अनुमति से मुसलमानों को उस क़ाफ़िले के साथ हो लिए जो उस समय के नए इस्लामी वतन के लिए खुद को बेवतन कर रहा था––मक्का छोड़कर हब्शा जा रहा था। वतन त्यागना वास्तव में कोई खेल नहीं लेकिन यही चीज़ उन लोगों के लिए एक दिलचस्प खेल थी जिन्हें यह पता चल गया था कि उनका घर इस दुनिया में कहीं नहीं बल्कि उस दुनिया में है जो शरीर और प्राण का रिश्ता टूटते ही शुरू होती है और फिर ख़त्म नहीं होती––एक दुनिया जहां खुदा अपने बन्दों की प्रतीक्षा में है कि कौन दुनिया के बदले आख़रत और कौन आख़रत के लिए अपनी दुनिया बेचकर वहां पहुंचता है––जहां एक तरफ़ वह जन्नत है जिसके गहरे हरे और हल्के हरे बाग़ों की सरसराहटों और दूध शहद की इठलाती हुई, लहराती हुई नदियों के किनारे––भय और चिन्ता की परछाइयों से दूर एक सौन्दर्य से भरपूर सदा की ज़िन्दगी सच्चे सपनों के जाल बुन रही है–– और जहां दूसरी ओर आग और नाग वाला नरक है जिसमें इन्सानी हड्डियां और खोपड़ियों और पत्थरों से भयानक ईंधन का काम लिया जायेगा––जहां आग, भूख की आग इन्सान को खायेगी और इन्सान, भूखा–प्यासा इन्सान आग को खायेगा और––नरक–वासियों के ज़ख़्मों का धोबन और पीप पिएगा।

ह0 मुसअब बिन उमैर (र0) जब हब्शे की तरफ़ चले थे तो उनके हाथ पांव पर बस उन जन्ज़ीरों के निशान थे जिनमें उनकी क्रूर मां ने उनको जकड़ डाला था। मगर वह वापस आए तो जिहाद और संकल्प की भड़कती भट्टी ने उनके फूल से जिस्म को तपाकर कुन्दन बना दिया था––मक्के की गलियों ने जिस रूपवान युवक को कभी हसीन तरीन कपड़ों में धीरे–धीरे मस्ती में गुज़रते देखा था, अब वही शरीर था जिस पर केवल एक चादर लिपटी थी और इस चादर में भी चमड़े के जोड़ और पेवन्द सिले हुए थे!–– फूल से गाल कुम्हला गए थे, गोश्त से भरपूर चेहरा उतर गया था। खूबसूरत माथे पर बेवतनी की धूल थी। जवानी के दर्द को आख़रत और मानवता की चिन्ता ने पीला और निढाल कर दिया था––मगर दिल?––दिल की एक–एक धड़कन पर यह यक़ीन आनन्द और सुरूर के नूरानी झरने गिरा रहा था कि अब उनकी परलोक या़त्रा की मन्ज़िल अज्ञानता और पाप के अन्ध्यारों में ढकी हुई दोज़ख की आग नहीं बल्कि ज़मीन और आसमान का नूर–– "खुदा" और खुदा की जन्नत है–– हर क़दम जो उठ रहा है, उनको जन्नत से क़रीब और क़रीब और जहन्नुम से दूर और दूर किये जा रहा है।

इसी मनःस्थिति में वह सीधे खुदा के रसूल (स0) की सेवा में हाज़िर हुए। आख़री रसूल (स0) और एक जवां साल उम्मती की आंखें चार हुईं और––रसूले खुदा (स0) की आंखों में आंसू और होंठों पर मुस्कान खेलने लगी।

"देख लो!" रसूल (स0) का दिल पुकार उठा––"देख लो यह है वह जवान जिसकी सारी दुनिया इश्क़े इलाही के बाज़ार में लुट गई है।"

उधर मां को बेटे के आने की ख़बर मिली और यह सन्देश रवाना किया:

"ओ नाफ़रमान (अवज्ञाकारी)!.....अब तू इस शहर में इस तरह आता है कि मुझसे मिलना भी पसन्द नहीं करता.....।"
"ऐ मां! मैं अब खुदा के रसूल (स0) का हूँ।" खुदा के जवान बन्दे ने कहलाया––"और अब हुज़ूर (स0) से मिले बिना किसी से भी मिलना मुझे पसन्द नहीं।"

आंहज़रत (स0) के दीदार से आंखें और दिल ठण्डे करने के बाद एक बार फिर वह अपनी मां से मिले ताकि उनको नरक की आग से बचाने का एक अन्तिम प्रयास कर देखें। "क्या अभी तक.....उसी दीन पर हो तुम?"–– आक्रोश से भरी आवाज़ में मां ने बेटे से पूछा।

"हां–– उसी दीन पर जिसको खुदा ने अपने लिए और अपने रसूल (स0) के लिए पसन्द किया है।" ह0 मुसअब (र0) ने जवाब दिया और पीड़ा से भरी हुई आवाज़ में एक बार फिर कोशिश की कि दोज़ख़ की तरफ़ लपकती हुई मां का दामन पकड़ लें। मगर मां नहीं मानी––और इस तरह खुदा के चाहने वाले की यह नाजुक परीक्षा जारी रही कि वह मां के प्यार का त्याग करता है या अल्लाह की रहमत का?

"क़सम है चमकते सितारों की।"–– बदनसीब मां ने खुशनसीब बेटे का प्यार भरा हाथ झटकते हुए कहा––''मैं कदापि तेरे दीन में दाख़िल नहीं होऊंगी कि मेरी सोच पर आरोप लगाया जाए और मेरी बुद्धि को घिसा–पिटा ठहराया जाए। जाओ! जाओ!! मैं तुम्हारे दीन ही को नहीं, खुद तुम्हें भी छोड़ती हूँ.....।"

और वास्तव में यह हुआ कि कुफ़्र व ईमान की जंग में मां और बेटे अलग हो गए। दोनों ने दीखने में एक जैसा त्याग किया मगर परिणामों और भावनाओं की दृष्टि से दोनों में ज़मीन व आसमान का अन्तर था। मां ने बलिदान किया और उसके बदले ग़म और गुस्से का तूफ़ानी प्रकोप हासिल किया–– बेटे ने कुर्बानी दी और झुकने व राज़ी रहने का ईश्वरीय पुरूस्कार पाया––एक दिल उस बलिदान से और कठोर हो गया––दूसरे दिल में कुछ और पीड़ा और नरमी पैदा हो गई और उसने महसूस किया कि सितम करने वाली ने मुझ पर नहीं, स्वयं अपनी जान पर सितम ढाया है।

अपने आपको प्रताड़ित करने वालों के लिए ह0 मुसअब बिन उमैर (र0) के दिल में कितनी पीड़ा थी और उसमें कितना असर था यह उस समय प्रकट हुआ जब रसूले खुदा (स0) ने उनको मदीने में इस्लाम का पहला प्रचारक बनाकर भेजा। "अक़बा" की पहली बैअत (शपथ) में जो बारह लोग इस्लाम ला चुके थे, उनके अलावा पूरा मदीना कुफ़्र और शिर्क का केन्द्र बना हुआ था। ऐसे लोगों की आबादी में घुसकर एकेश्वरवाद और झूठे खुदाओं की निश्क्रियता का एलान कोई खेल नहीं था।

यह एलान भिड़ों के छत्ते को छेड़ देने से ज़्यादा ख़तरनाक था। वही शख़्स यह एलान कर सकता था जिसे खुदा की ज़ात व गुणों का कम से कम इतना यक़ीन तो हो जितना स्वयं अपने अस्तित्व का––और जिसके दिल में यह बात जम चुकी हो कि हक़ की राह में मारा जाना ही हक़ीक़त में ज़िन्दा हो जाना है––सदा के लिए जीवित हो जाना।

और हमारी तरह ह0 मुसअब बिन उमैर (र0) का दामन उस अटल विश्वास की दौलत से ख़ाली न था–– वह तो सब कुछ लुटाकर उस यक़ीन तक पहुंचे थे––और उसी यक़ीन पर अपना जीवन भेंट चढ़ाने के लिए हर क्षण बेचैन थे। न जाने कैसा होता होगा वह यक़ीन और उसकी जीवनदायी मनोदशा!? जिसके बारे में हमने दूसरों से सुना है, किताबों में पढ़ा है––मगर कभी खुद इस यक़ीन के तूफ़ान को अपने अस्तित्व पर से गुज़रते हुए महसूस नहीं किया।.....।

ह0 मुसअब (र0) इस अटल विश्वास की धारा बने हुए मक्के से चले और रेगिस्तान के कणों की प्यास अपने छालों और आंसुओं से बुझाते हुये मदीने में दाख़िल हुए। ज़रारह भवन में ठहरे और इन्सानों के दिलों को बातिल से हक़ की ओर लौटाने के लिए इनका दिल तेज़ी से धड़कने लगा। दिल की यह दर्द भरी धड़कन जल्द ही रंग लाने लगी––अज्ञानता और नादानी ने जिन दिलों को पत्थर की तरह सख़्त कर दिया था, उनमें ईमान की गर्मी पैदा हुई और पत्थर दिल पानी होने लगे––बहुत जल्द बातिल भी उनके ख़िलाफ़ हरकत में आ गया––और सत्य व असत्य की वह कशमकश शुरू हो गई जिसके ख़तरे से गुज़रे बिना कभी सत्यवादी इस दुनिया में सफल नहीं हुए हैं।

"बनी अशहल" के सरदार सअद बिन मुआज़ को इस नए आन्दोलन का पता चला और वह आग–बबूला हो गया। उसने अपने एक आक्रोश से भरे कार्यकर्ता "उसैद" को भाला देकर इस निर्देश के साथ रवाना किया।

"जाओ! और देखो कि यह मक्के से आने वाला जवान कौन है जो हमारे युवकों को गुमराह किये दे रहा है––जाओ! और उसको ज़िन्दा या मुर्दा मदीने से बाहर करो....."

और उसैद अपनी आंखों से चिंगारियां सी उड़ाता हुआ ज़रारह मन्ज़िल में आ धमका। "तू कौन है और ––क्या कर रहा है?" वह गरज करबोला––"जान की ख़ैर चाहता है तो फ़ौरन चलता–फिरता नज़र आ

मगर कितने सच्चे मोमिन थे ह0 मुसअब बिन उमैर (र0) जो इस थर्रा देने वाली धमकी से न डरे और न गुस्से में आए। उनकी आंखों से इस नफ़रत भरी धमकी के जवाब में जो चीज़ टपकी वह एक तीव्र "पीड़ा" थी–– मुंह से फूल झड़े और हिकमत (विवेक) जो आस्तिक की विशेष मीरास है उससे काम लेते हुए उन्होंने आने वालों को मजबूर कर दिया कि वह बैठें और उनकी बात सुनें.....उसैद ने अपना भाला ज़मीन में गाड़ दिया और हौलनाक तेवरी चढ़ाए हुए बैठ गया–– इधर ह0 मुसअब बिन उमैर (र0) ने बहुत ही दर्द भरी आवाज़ में उसको पवित्र कुरआन की कुछ आयतें सुनाना शुरू कीं। सुनने वाले की हालत तेज़ी से बदल रही थी–– चढ़े हुए तेवर उतरने लगे––जज़्बात की पीड़ा चेहरे से उजागर हुई और अभी–अभी जिन आंखों से खून टपक रहा था उनमें आंसू छलक पड़े––उसैद का दिल उसके हाथों से निकल चुका था और दूसरे ही लम्हे वह ईमान व इस्लाम की शरण में था। फिर उसी उसैद को जिसे कुफ़्र ने भेजा था, अब इस्लाम ने कुफ़्र की तरफ़ रवाना किया कि वह किसी तरह क़बीले के सरदार को यहां तक खींच लाए––चुनांचे सअद बिन मआज़ भी आए और इस हक़ की आवाज़ पर खिंचते चले आए। शाम होते–होते पूरे क़बीले के दिलों को मुसअब बिन उमैर (र0) के मन की पीड़ा ने इस्लाम की गोद में खींच लिया था––और इस तरह जल्द ही पूरे मदीने ने इस्लाम के विजित नगर में बदलकर रसूले खुदा (स0) के लिए पलकें बिछा दीं।

लेकिन इस ख़ामोश जिहाद में कुफ़्र और शिर्क की मांसिक पंक्तियां उलट देने के बाद भी मुसअब बिन उमैर (र0) को लगता था कि अभी खुदा के दरबार में वह बन्दा होने का कर्तव्य नहीं निभा सके––चुनांचे बदर और उहद के मैदानों में उनकी जाने अज़ीज़ भी जान देने वाले के काम आ गई।

इस जंग में इस्लाम की पताका उनके हाथ में थी। दुश्मन की तलवार उनके उसी बाजू पर गिरी और हाथ कट गया, मगर झन्डा नहीं गिरा––वह अब उनके दूसरे हाथ में था। उन्होंने देखा कि एक हाथ से वह एक ही काम कर सकते हैं–– या झन्डा फेंक कर जान बचाने को तलवार चलाई जाए या तलवार फेंक कर परचम बुलन्द रखा जाए। थोड़ी देर और इस पताका को बुलन्द रखना उनको इस दुनिया में जीते रहने से कहीं ज़्यादा प्रिय था––ज़िन्दगी तूफ़ानी भावनाओं के इशारों पर बिजली की तरह हरकत में थी––झन्डा ऊंचा उठा हुआ था–– और बाजू शहीद होने की प्रतीक्षा में था। दुश्मन की तलवार एक बार फिर चमकी और वह बाजू भी कट गया––मगर कटे हुए बाजुओं ने झन्डे को सीने से लिपटने की भरपूर कोशिश और की––दुश्मन का भाला हरकत में आया और मुसअब (र0) के सीने से इस तरह टकराया कि आधा भाला टूट कर सीने के अन्दर ही रह गया––अब वह लड़खड़ाए और चक्कर खाकर ज़मीन पर गिरे और उनके तड़पते हुए जिस्म पर इस्लाम का झन्डा भी तड़पता हुआ गिरा.....।

और फिर––रसूले अकरम (स0) उनकी रक्तरंजित लाश के क़रीब हुए और मक्के के इस खूबसूरत लाडले जवान को खुदा की राह में ख़ाक़ व खून में लिथड़ा हुआ पाकर आप (स0) का दिल भर आया––आंखे भीग गईं और आवाज़ जज़्बात से कांपने

लगी––"मुसअब (र0)!" आंहज़रत (स0) ने शहीद की आत्मा को आवाज़ देते हुए कहा––"मुसअब (र0)! मैंने तुम्हे मक्के में देखा था कि तुम जैसा सुन्दर और अच्छे वस्त्र पहनने का शौक़ीन कोई न था––आज देखता हूं कि बाल बिखरे हुए हैं और जिस्म पर बस एक चादर है।" यह कहते–कहते आप (स0) जोश में आ गए और एलान कियाः

"खुदा का रसूल (स0) गवाही देता है कि क़यामत के दिन खुदा के समक्ष तुम बड़े सम्मान के साथ हाज़िर किए जाओगे।" और आह वह चादर! जो इस महान शरीर का कफ़न भी पूरा न बन सकी। सर ढकते थे तो पाँव खुल जाते थे और पाँव ढकते थे तो सर खुल जाता था––आख़िर पाँव पर घास डाली गई और इस तरह यह जवान शहीद दफ़न किया गया।

कितना रश्क के क़ाबिल था वह मोमिन जिसके ईमान को अल्लाह के रसूल (स0) ने इस तरह प्रमाणित किया हो!––और––कितना रोने लायक़ हैं वह हमारे "ईमान" जिनके लिए खुद हमारे दिल भी गवाही देते–देते किसी भय से चुप हो जाते हैं। कल जब हश्र के मैदान में स्वयं खुदा गवाही दे रहा होगा कि यह मेरे, सचमुच मेरे बन्दे थे और जब आंसू व लहू में नहाए यह शरीर खुदावन्दी पुरूस्कार से सम्मानित किये जा रहे होंगे, खुदा जाने हम कहां होंगे और किस हाल में होंगे।

ऐ लोगो! कभी तो सोचो––किसी पल तो मंथन करो कि अन्जाम क्या होना है हमारा––हम किस मुंह से उस मालिक के सामने जायेंगे जिसके बेहद और अनगिनत वरदानों का शुक्र हम इतना भी तो न कर सके जितना एक कुत्ता अपने मालिक का करता है। खुदा के लिए सर देना और सीने पर घाव खाना तो बड़ी चीज है, हम तो निर्लजता और विद्रोह की उस अति से भी खुद

को न बचा सके जहां जुर्म व पाप का एहसास ही मिट जता है और मानव का अस्तित्व जानवरों से भी बदतर हो जाता है।

हम हनफ़ी हैं––अहले हदीस हैं, हंबली और शाफ़ई हैं। हम अहले सुन्नत वल जमाअत हैं––सभी कुछ हैं मगर नहीं हैं तो वह सादा दिल "मुसलमान" नहीं हैं जो हर पल अपने अन्दर यह तड़प महसूस करता रहता है कि एकेश्वरवाद का सूत्र "कलिमए तौहीद" ज़बान से निकाला है तो इसका हक़ भी किस तरह अदा करके रहे–– हाए यह तौहीद का कलिमा––जिसके अर्थ का वास्तविक भाव आदमी के अन्दर पैदा हो जाए तो फिर वह सत्य और असत्य के रण क्षेत्र में दीवाने की तरह कूद पड़ता है और जब उसका बदन ज़ख़्मों से चूर होकर रूह को अलविदा कहने लगता है तो मन के भीतर से आवाज़ बुलन्द होती है कि ऐ परवरदिगार! ऐसा ही जीवन आप अगर हज़ार बार प्रदान करें तो यह गुलाम इसे इसी तरह आपकी राह में बलिदान कर देगा।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

19

ईमान – एक कठिन परीक्षा–एक महान सफलता

ह0 बिलाल बिन रब्बाह (र0) मुसलमान होने से पहले केवल एक हब्शी गुलाम ही तो थे––एक निष्क्रिय अस्तित्व जिसका दुःख भरा जीवन उस समय तक हर दृष्टि से एक काली रात था––मानवीय गुलामी के उस दौर में उनके पास कुछ नहीं था––कुछ भी तो नहीं।

साक्षात निःस्वार्थ और वफ़ादार–

सम्पूर्ण बेचारगी और बेबसी–

दुनिया के ठाठ–बाट और दिखावे की दौलत से एकदम ख़ाली हाथ! मगर यह बात उस वक़्त की की है जब तक वह एक आदमी के गुलाम थे। उमय्या बिन ख़लफ़ जैसा काफ़िर व मुश्रिक उनका मालिक बना हुआ था जिसका स्वामित्व बिलाल बिन रब्बाह को दो रोटियों और दो चीथड़ों के बदले उनसे उनकी पूरी मानवीयता के अधिकार ख़रीद लेना चाहती थी, लेकिन यह विडम्बना कोई नई बात नहीं––बातिल (सत्य को नकारने वाले) के आक़ाओं ने तो हमेशा यही खेल खेला है––सदा यही खेल खेलते रहेंगे। ख़ुदा को नकारने वाली मानवीय गुलामी की प्रथा ने ख़ुदा के बन्दों को इसी तरह लूटा है––हमेशा इसी तरह लूटा है।

जीवन के पीड़ादायक दौर में बिलाल ने मोहम्मद(स0) की नई आवाज़ सुनी।

"खुदा के सिवा कोई खुदा नहीं।"

गुलामी के दर्द से घायल रूह को इस आवाज़ ने चौंका दिया––झंझोड़ डाला। उन्हें पहली बार इस तथ्य का सनसनी ख़ेज़ अहसास हुआ कि मालिक उमय्या बिन ख़लफ़ और गुलाम बिलाल बिन रब्बाह दोनों समान हैं––दोनों गुलाम हैं––एक ही खुदा के गुलाम। वास्तविकता के इस बोध ने बिलाल की रूह में एक ओर बन्दगी का अथाह दर्द भर दिया, दूसरी तरफ़ मानवीय गौरव के शोले कूट दिए। यह आवाज़ यक़ीन और ईमान की बिजली की लहर की तरह आयी। उनके अर्न्तमन और अन्तर्रात्मा में घुल–मिल गई और ठीक उस समय जब वह अपने खुदा के क़दमों पर झुक रहे थे, उनका शरीर और आत्मा बन्दों की बन्दगी और गुलामों की गुलामी से सदा–सदा के लिए बेज़ार और आज़ाद हो रहे थे। सर से पाँव तक गुलामी की लौह ज़न्जीरों में जकड़ा हुआ इन्सान सहसा पुकार उठा और गुलामी की बेड़ियां छनछनाकर टूट गिरीं।

खुदा के सिवा कोई और खुदा है ही नहीं––नहीं है––हरगिज़ नहीं है और––
उसी घड़ी वह आदमी जो एक हब्शी (हब्शे का रहने वाला काला गुलाम) था, उन लोगों के लिए "सय्यदना बिलाल (र0)" हो गया जिनके सीने रौशन और आंखें भीगी–भीगी थीं––

"खुदा के सिवा और कोई खुदा नहीं!"

हाए यह शब्द!––यह कुछ लफ़्ज़!!

क्या यह बस कुछ खोखले शब्द हैं जो जुबान की कुछ हरकतों से बन जाते और हवा के एक झोंके से बिखरकर नष्ट हो जाते हैं? अगर वास्तव में ऐसा ही होता तो फिर ऐसा कभी न होता कि इन लफ़्ज़ों पर जीवन के खून की एक–एक बूँद टपका देने, दिल की एक–एक धड़कन लुटा देने और उम्र की अन्तिम सांस तक भेंट कर देने के बाद भी इन शब्दों को मुँह से निकालने वाले यह कहते हुए दुनिया से जाते कि हाए इन लफ़्ज़ों का धन्यवाद न कर सके। कैसे होश वाले हैं वह दीवाने जो इस भयानक धोखे के सहारे जीना चाहते हैं कि हमें बस इतना कहने पर ही छोड़ दिया जायेगा कि "हम ईमान ले आए" और हमें किसी परीक्षा में न डाला जायेगा।

बिलाल (र0) ने यूं नहीं सोचा था––उन्होंने बिस्तर पर लेट कर नहीं, जान हथेली पर रखकर यह कलिमा पढ़ा था और इसीलिये उनको खुदा ने खूब–खूब ही आज़माया "सैय्यदना बिलाल (र0)" बनने से पहले––इससे पहले कि जन्नत यह अभिलाषा रखती कि इस माटी के पुतले के क़दम मेरे फूलों से सजे फ़र्श पर पड़े, बिलाल को सालों तक मानवीय प्रताड़ना के कांटों पर घसीटा गया और जलती हुई रेत में डालकर बेरहमी की ठोंकरों से रौंदा गया। निःसंदेह यह एक असहनीय पीड़ा थी, मगर अत्याचार और अनीति की लगातार आक्रमण से वह एक घुटी–घुटी चीख़ जो उस वक़्त भी बिलाल (र0) के सूखे और जलते हुए होंठों से बुलन्द होती थीं––उसमें यह शब्द सुनाई देते थे––––
खुदा एक है––मुझे मार डालो, मगर खुदा एक है––"अ–हदुन वहदहू ला शरीकः लहु"

जलती हुई रेत की चिंगारियों पर सीधा लिटाकर झुलसते हुए सीने को मनों पथरीली शिला से कुचलकर––क़ाफ़िरों के झुन्ड के झुन्ड एक बिलाल (र0) से कहा करते थे––हमारे खुदाओं को मानो––"अहद! अहद! अहद! अहद!––एक! एक! एक!एक!" खुदा की क़सम! यही था ह0 सय्यदना बिलाल (र0) का बेचैन संकल्प! दर्द और वेदना का भाव कहीं चला नहीं गया था। मगर जिसका दिल ईमान से चमक उठा हो उसके होंठों से कराह भी निकलती है तो ईमान की शान लिए हुए।

रात के अन्धेरे में उनको ज़न्जीरों के कसाव घायल ही कर डालते––रात भर यह ज़न्जीरें गोश्त में अन्दर घुसी हुआ करतीं–– और रात इसी तरह आंखों में कट जाती। भोर की रौशनी में इन घावों को उधेड़ डालने के लिए तड़ातड़ कोड़ों की मार दी जाती। नीली–नीली रगें उभरतीं–फट जातीं और खून देने लगतीं। फिर रात भर के लिए इन ज़ख़्मों से चूर आस्तिक को बेड़ियों में ऐंठने के लिए छोड़ दिया जाता। पहाड़ जैसी रात इसी आलम में कट जाती कि अत्याचारी ताज़ा दम होने के लिये मीठी नींद में ख़र्राटें लेते और पीड़ित दलित, दर्द भरे घावों और कांटों पर करवट भी न बदल सकता था। दूसरे दिन का सूरज देखता कि सत्य और निष्ठा के लिए विपत्तियां सहने वाले को गर्म–गर्म बालू के भाड़ में बेतहाशा झोंक दिया जाता।

"अब भी कह दे खुदा एक नहीं.....!" कुफ़्र और शिर्क के मानव–नरभक्षी इसके ऊपर झुकते और चिल्लाते।

ज़ख़्मों और पीड़ा–वेदना में डूबी हुई भीतर दबी आवाज़ फिर सीने से उभरती और "अहद! अहद! अहद! अहद!" का आसक्त उद्घोष ज्यों का त्यों सुनाई देता। जुल्म और निष्ठुरता थक

हार कर बैठ जाती और बिलाल (र0) की आवाज़ को किसी तरह ख़ामोश न कर पाती––हां हां––कभी बिल्कुल ऐसा ही था कि हज़ारों अत्याचारी मिल कर भी किसी एक बिलाल (र0) की सत्यवाणी को न दबा सकते थे। मगर अब करोड़ों मुसलमानों के सीनों में भी इस आवाज की कोई धमक सुनाई नहीं देती। हम करोड़ों में भी एक बिलाल (र0) की ईमानी शक्ति नहीं––और हम अपने ईमान की इस अज्ञात थोड़ी सी जान पर किस इत्मेनान से बैठे हैं––पाँव पसार कर सो रहे हैं। दिन में अकड़–अकड़ कर ज़मीन पर चल–फिर रहे हैं। ऐ लोगो! यह हमें क्या हुआ है?....।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

20

एक खेल– एक वास्तविकता

"आज मैं अबू बकर (र0) से वह खेल खेलूंगा जो किसी ने न खेला होगा!!" उमय्या बिन ख़लफ़ ने एक वहशी ठहाके की गरज के साथ अपने साथियों से कहा। वही उमय्या जिसके ग़ुलाम ह0 बिलाल हब्शी (र0) थे। जिसने शुरू में बिलाल (र0) के ईमानी दावे को रेत का महल और बच्चों का एक खेल समझ रखा था––जिसने एक ग़ुलाम के "एकेश्वरवादी गीत" को कुचल डालने के लिए बदतरीन सितम के अभ्यास किए और––––फिर भी वह ईमानी आत्मा जब वही नग़मा––लहू तरंग नग़मा ज़ोर–ज़बरदस्ती की भयानक फ़िज़ाओं में लगातार अलापती चली गई तो निर्दयी व क्रूर मालिक का पूरा स्वामित्व हैरत और झुंझलाहट के गन्दे पसीने में ग़ोते खाने लगा।

"तो क्या इरादे हैं आख़िर?" लोगों ने ख़ास दिलचस्पी लेते हुए पूछा।

"तुम जानते हो।" उमय्या बिन ख़लफ़ की दोनों आंखों में वहशत व धूर्तता की मिली–जुली चमक दौड़ने लगी–"तुम जानते हो कि बिलाल मेरा गुलाम है और गुलाम की वास्तविकता होती ही क्या है?––फिर जबसे उसने अहदुन! अहदुन!! की रट लगाना शुरू की है, मेरे लिए वह "काले मांस" का एक घृणित अस्तित्व बनकर रह गया है।"

मैंने कहा था कि मेरी पहली ही झिड़की में इसके नए दीन का भूत उतर जाएगा––मगर नहीं उतरा––फिर मैंने ऐसा कौन सा जुल्म है जो इसके ऊपर नहीं किया?––अग्नि से भरे रेत के तन्दूर में डाल–डालकर मैंने उसके मज़हब को भस्म कर देना चाहा––फिर उसके सीने पर भारी चट्टान भी रखकर देखी––फिर कंकड़ों के ऊपर इसके शरीर को घसीट–घसीट कर कोड़े भी बरसाए, मगर क्या वह अपने मज़हब से हट सका?"

"उफ़! मुहम्मद (स0) का यह जादू!––इसे उलटना मेरे बस की बात नहीं।" "मगर तुम तो अबू बक्र (र0) से कोई खेल खेलने की बात कर रहे थे।"––––लोगों ने चुभते हुए लहजे में कहा।

"हां!" उमय्या बिन ख़लफ़ गुर्राया––"हां––यह खेल भी तुम देख लोगे।––क्या यह बात दिलचस्प नहीं कि अबूबकर को इस हब्शी गुलाम के काले गोश्त पर मुहब्बत आ रही है।"

उमय्या बिन ख़लफ़ का एक वहशतनाक क़हक़हा गूंजा।

"वह कहता है"–– वह फिर बोला––"वह कहता है कि यह हब्शी गुलाम मेरा भाई है। वह इसको हर क़ीमत पर मेरे जुल्मो–सितम के चंगुल से निकालने के लिए बेचैन हो रहा है।"

"तो इस खेल में खेलने की बात क्या हुई?" लोगों ने फिर छेड़ा।

"खेल?" उमय्या बिन ख़लफ़ झल्ला कर बोला––काली चमड़ी के एक घिनावने ढांचे का यह मोल–तोल क्या कोई खेल नहीं? मैं देखना चाहता हूं कि अबू बकर इस बेकार चीज की कितनी बड़ी क़ीमत चुकाने की हिम्मत रखता है––मैं उसको इस गुलाम की क़ीमत की बढ़ती–चढ़ती मांगों से पसीने–पसीने कर डालूंगा––या फिर काले खून के बदले मुझे वह चमकती–दमती चीज़ हाथ आएगी––सोना!–सोना!!–सोना!!!––कैसा अद्‌भुत खेल! जिसमें हर पहलू से अबू बकर की हार निश्चित है और मेरी जीत!!– हा हा–हा हा!–––।"

"अच्छा!" लोग खिलखिला कर हंसे––" अच्छा तो यह बात है।––बिलाल के कठोर पराक्रम के बाद अब अबू बकर की सहानुभूतियों पर क्रूरता का अभ्यास होगा।––"

"हा हा हा!––हा!" उमय्या बिन ख़लफ़ का क़हक़हा किसी दुष्ट आत्मा की बेसुरी चीख़ पुकार के अन्दाज़ में गूंजता रहा।

गरम–गरम बालू की चिंगारियों पर बिलाल हब्शी (र0) के जिस्म को भूना जा रहा था––पत्थरों के ऊपर घसीटा जा रहा था––कोड़े लगातार पड़ रहे थे।

"अहदुन!––अहदुन!!" बिलाल की कराह थी–– अबू बकर (र0) ने यह आवाज़ सुनी––बेक़रार अबू बकर (र0) तेज़ी से झपटे जैसे बिलाल की जुल्म सहने की सारी टीसें ––तमाम दर्द अबू बकर (र0) के मन में सिमट आया हो। वह सचमुच तड़प उठे थे।

"क्या इस ग़रीब के विषय में तुझे खुदा का भी डर नहीं।" अबू बकर (र0) ने बिलाल (र0) की दुर्दशा की ओर इशारा करते हुए उमय्या से पूछा।

"इसके तमाम दुःख–दर्द की ज़िम्मेदारी खुद तुम लोगों पर है।"––उमय्या ने चढ़ दौड़ने के अन्दाज़ में कहाः
"तुमने ने ही इसको बिगाड़ा और फिर इस ख़राब हालत तक पहुंचने पर मजबूर किया––अब इसको बचाकर दिखाओ––बताओ इसे ख़रीदते हो?––बोलो"

"हां"––ह0 अबू बकर (र0), बिलाल (र0) की निजात के लिए बेकल होते हुए बोले––"हां मैं तैय्यार हूं––हर क़ीमत पर!"

"क्या क़ीमत दोगे?"––उमय्या ने तीखी नज़रों से देखा।

"क़सतास!" अबू बकर (र0) ने छूटते ही कहा––"मेरा मज़बूत, चुस्त बलशाली ग़ुलाम क़तास! जिसके कुफ़्र से मैं इस तरह नाखुश हूं जिस तरह तुम बिलाल (र0) के ईमान से!––मुझे बिलाल (र0) से स्नेह है–– तुम्हें क़स्तास से मुहब्बत होनी चाहिए।"

एक गुलाम से मुहब्बत करने की बात सुनते ही उमय्या बिन ख़लफ़ ने बहुत बुरा मुंह बनाया––कुछ सोचा और फिर फ़ौरन बोला :

"मन्जूर है।"

लेकिन अचानक फिर फ़ौरन ही उमय्या बिन ख़लफ़ ने जिगर चीरने वाला ठहाका मारा––

"नहीं"! खुदा की क़सम!" वह हंसते हुए बोला और उसकी आंखों में शैतानी बिजलियां कौंद रही थीं। क़सतास ही नहीं, उसकी पत्नी भी देना होगी।––इसकी पत्नी भी देना होगी।––"

मुझे स्वीकार है।" अबू बकर (र0) ने एक पल गंवाए बिना फ़रमाया!

लेकिन अचानक फिर वही ठहका!
"नहीं! खुदा की क़सम!" उसने ठहाका मारते हुए सारी वार्ता पर पानी फेरते हुए कहा––"क़स्तास और उसकी पत्नी के साथ उसकी बेटी भी लूंगा।"

"ओह––बेटी!"

"हां––उसकी बेटी!"

अबू बकर (र0) ने कुछ क्षण सोचा। फिर दो टूक लहज़े में बोले––"चलो दी।"

लेकिन एक बार फिर उमय्या बिन ख़लफ़ ने हौलनाक क़हक़हा बुलन्द किया।

"नहीं!––ख़ुदा की क़सम!––क़स्तास भी और उसकी बीवी भी, उसकी बेटी भी और दो सौ दीनार अलग!––बोलो! बोलो!––क्या बिलाल को ख़रीदोगे?"

"शर्म!" बार–बार ज़बान बदलने वाले की शरारत से तंग होकर ह0 अबू बकर (र0) बोले––"क्या झूठ बेलते हुए तुझे शर्म और लज्जा नहीं आती?"

"लात और उज़्ज़ा की क़सम!" उमय्या बिन ख़लफ़ ने गम्भीर होते हुए कहा––"बस यह अन्तिम क़ीमत है––फिर बात तय हुई समझो।"

"चल ओ काफ़िर मुझे यह भी मन्जूर है।" मुसलमान भाई बिलाल (र0) की सहानुभूति में डूबे अबू बकर (र0) ने सीना तानकर कहा––

सौदा ख़त्म हो चुका था––एक कठिन परीक्षा में दोनों मोमिन ख़रे उतरे थे। बिलाल की जान और अबू बकर (र0) के माल पर से तूफ़ानी परीक्षा पूरी ताक़त से गुज़री और दोनों विजयी होकर निकले! केवल इसलिए कि "ख़ुदा" दोनों को जान और माल से ज़्यादा प्रिय था।

एकदम एक नया ठहाका गूंजा––लेकिन यह ठहाका उमय्या बिन ख़लफ़ का नहीं, उसकी बीवी का था, जिसके विचार में बिलाल (र0) की इतनी बड़ी क़ीमत देकर अबू बकर, ईश्वर क्षमा करे–– बेवकूफ़ बन गए थे।

"हम तो बिलाल को एक औक़िया सोने में भी ख़ुशी से बेच डालते।" उसने कहा––"बिलाल हमारे लिए हमारी सबसे मूल्यहीन चीज़ के सिवा आख़िर क्या है!"

"कौन किसे बताए कि बेवक़ूफ़ कौन बना!" अबू बकर (र0) की आत्मा वेदना से भर गई–– बिलाल (र0) मेरे लिए इतना मूल्यवान है कि सौ औक़िया भी क़ीमत ठहरती तो अबू बकर (र0) पीछे हटने वाला नहीं था।"

ह0 अबू बकर (र0) की यह दर्द भरी बात उन लोगों ने सुनी और––फिर भी उन्हें "बेवक़ूफ़" ही समझा। इसलिए कि कुफ़्र दुनिया को पूजने का दूसरा नाम है––और दुनिया की बेहद क़ीमती चीज़ सोने चांदी से बढ़कर कौन सी है?

––लेकिन क्या हम अबू बकर (र0) की यह बात समझ रहे हैं?

क्या हमारे सिर में उमय्या बिन ख़लफ़ का दिमाग़ है या हमारे सीने में अबू बकर (र0) जैसा दिल है? अल्लाह और माल में कौन हमें ज़्यादा प्यारा है?–– और क्या हम लोग हर पल इसी इम्तिहान से नहीं गुज़र रहे हैं जहां से ह0 अबू बकर (र0) इस तरह जीत कर गुज़रे थे?––ख़ुदा के कितने बन्दे हैं जो हमारी दीवारों के साए में भूख और अभाव के शोलों में जल रहे हैं––हमारे पास इतना धन मौजूद है कि हम उन्हें इस दुःख–दर्द की जानलेवा क़ैद से मुक्ति दिला सकते हैं––मगर क्या हमने ऐसा किया है?––क्या हम ऐसा करने का जोश रखते हैं?

यह सवाल, जवाब चाहता है और जवाब ही यह बताएगा कि हम इस्लाम की ग़ुलामी का दम भरने वाले सच–मुच इस्लाम

के गुलाम हैं या हमने या हमने खुद इस्लाम को अपनी कामनाओं का गुलाम और अपने हित साधने का माध्यम बना छोड़ा है। किसी और से नहीं ख़ुद अपने से उत्तर लो और फिर उस दिन की प्रतीक्षा करो जब कर्मों का लेखा–जोखा देखकर चीख़ पड़ोगे कि––"हाए ख़राबी! यह कैसा काग़ज़ है कि इसने हमारी छोटी और बड़ी किसी भी बात को रेखांकित किए बिना नहीं छोड़ा।"

जुल्म और सितम के इन लगातार भूकम्पों में बिलाल को पिसता होता हुआ देखकर कोई यह भी कल्पना नहीं कर सकता था कि यह जानलेवा यातना उनको जीवित भी छोड़ सकेगी––फिर यह कोई कैसे सोच सकता था कि जिस क्रूर स्वामी के "हाथ" दिन दहाड़े मक्के की सड़कों पर बिलाल का गला घोंट डालने का दम रखते हैं, उसी "स्वामी" को एक दिन अपने इसी दास के हाथों ख़ाक और खून में तड़पना होगा।––और दरिन्दगी के तूफ़ान में इसी "गुलाम" की घुटी–घुटी यही आवाज़ एक दिन ख़ान–ए–काबा की छत से अज़ान का दिव्य उद्घोष बनकर उठेगी तो खुदा के अर्श को छू लेगी।

भला कौन कल्पना कर सकता था!

मगर खुदा की क़सम!––घटनाएं ऐसे ही घटती गईं। हालात सम्भावनाओं के उलट पेश आए। परिस्थितियों और सम्भावनाओं की बाज़ी पलट गई और खुदा की तक़दीर ने इतिहास के चौराहे पर खड़े होकर सिद्ध किया कि बिलाल (र0) उसी खुदा का गुलाम है जो खुदा जिस बात का इरादा कर ले तो फिर वह होकर रहती है।

कुफ़्र और इस्लाम की पहली जंग में खुदा ने उमय्या बिन ख़लफ़ की गरदन को बिलाले हब्शी (र0) की तलवार के हवाले कर

दिया था और मक्का विजय की एतिहासिक मुहिम में मुहम्मदे अरबी (स0) और बिलाल हब्शी (र0) एक ही ऊंटनी पर एक साथ सवार थे–– और जब बड़े–बड़े मोमिन काबे में विजयी अन्दाज़ में दाख़िल हुए तो काबे की छत से पहली अज़ान बुलन्द कराने के लिए अल्लाह की रहमत और मुहम्मद (स0) की नज़र उसी श्याम वर्ण के हब्शी ग़ुलाम को सुर्ख़ और सफ़ेद अनगिनत चेहरों के बीच ढूंढती फिर रही थी––कुफ़्र और शिर्क ने जिस बिलाल (र0) को पैरों से रौंद डालने का प्रयास किया था, इस्लाम ने उसी बिलाल––उसी काले ग़ुलाम को "सैय्यदना बिला र0 बनाकर उठाया–– काबे की छत तक पहुंचाया। और उसके काले होंठों को इस "महा सम्मान" के लिए चुन लिया कि काबे की पहली अज़ान उन्हीं पर एक नूर का शोला बनकर लरज़े, एक नूरानी मोर्चा बनकर फूटे और सदा के लिए फ़िज़ाओं और सीनों में रवां दवां रहे। आज भी जब आत्मा के झरोके से पुरानी यादों की खुशगवार हवा दिल और दिमाग़ की वादियों में प्रवेश करती है तो एक ज्योति–गीत नस–नस में बिखतरता चला जाता है––जिसका सरमदी नग़मा दिल की धड़कनों में समाहित होकर एहसास दिलाता है कि बिलाल (र0) की अज़ान का उद्घोष पूरब से पश्चिम तक जारी पानी की तरह बह रहा है और बहता रहेगा। वह केवल एक पुकार नहीं थी, शब्दों में ढली हुई बिलाली आत्मा थी जो रहती दुनिया तक विशाल फ़िज़ा में चमकती रहेगी।

कैसे थे वह लोग जिन्होंने जी–जान से सत्य और निष्ठा की क़ीमत पहचानी। सदा–सदा के लिए खुशी से जीने के लिऐ इस दुनिया––हां इस दुनिया में सिसकते रहना भी उनके लिए एक खेल था। उन्हें तो कड़ी परीक्षा की पथरीली घाटियों से जन्नत की वाटिकाओं की खुशबू आई थी–– अपने आंसू और खून की बाढ़ में इस यक़ीन के सहारे थपेड़े खा–खा कर वह

मुस्कुरा सकते थे कि इस तूफ़ान के उस पार एक मुरादों का साहिल, भी है––जहां खुदा और खुदा की इबादत न जाने कब से उनकी प्रतीक्षा में है।

––और कैसे हैं वह लोग जो खुदा की जन्नत को मुफ़्त में पाने की कामना भी इस तरह नहीं करते जिस तरह सचमुच किसी चीज़ की आरजू की जाती है।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

21

दो महबूब तरीन बूंदें

जब खुदा के दरबार में अपने दोषी होने का भाव खुदा की महिमा का एहसास दिलाता है तो एक बन्दे की आंखे आंसुओं से तर हो जाती हैं–– और.....

जब सच्चाई को पसन्द करते–करते इन्सान को लगता है कि सच्चाई उसकी नस–नस में रूह बनकर समाहित हो चुकी हैं तो ठीक उसी क्षण वह यह भी महसूस करता है कि खुदा की ज़मीन पर शैतानी झूठ का हर एक अस्तित्व उसके दिल में कांटे की तरह खटकने लगा है जिसको निकाले बिना उसको चैन आ ही नहीं सकता––हाए यह ज़िन्दगी का सबसे ऊंचा और सौन्दर्य से परिपूर्ण शिखर! कि जहां तलवारों की छाँव में सोने की अभिलाषा ज़िन्दगी को मौत की तलाश में पाँव के छाले लिए फिरती है––जब ज़ुबान से "अल्लाह–अल्लाह" करने वाला बेचैन होता है कि उसके लहू की हर बूंद से यही आवाज़ आए और इसी "हसीन नाम" को इसके जीवनदायी खून के क़तरे धरती के एक–एक कण के सीने पर छाप डालें।

आह––यह दो बूंदे!

कितने क़ीमती, कैसी पवित्र!!

जिनमें से एक पानी है और दूसरा लहू––मगर दोनों में एक ही दासता की तड़प और एक ही समर्पण का दर्द नूर के शोले की तरह कंपकंपा रहा है। शायद इसी लिए खुदा ने दोनों का

मोल एक ही ठहरा दिया––साधुवाद के पात्र हैं–– दो महबूब तरीन क़तरे!––दो प्रतिष्ठित तोहफ़े जिनसे ख़ुदा को प्यार है––और––

कैसा क़िस्मत का धनी था वह अम्मार बिन यासिर (र0) कि जिसने अल्लाह के जमाली व जलाली दरबार में यह दोनों ही महबूब तोहफ़े समर्पित किए।

उनकी ज़िन्दगी आंसू और खून के उस दोरुख़ी जज़्बे और जुनून में आच्छादित होती हुई उठी––सद्मार्ग के निशान अपने खूनी आंसुओं से निखारती हुई चली और फिर हमेशा के लिए एक शौक़ का सजदा बनकर अल्लाह के "दर के पत्थर" में समा गई। वह ह0 यासिर (र0) के बेटे थे––वही बूढ़े यासिर (र0) जिन्होंने अल्लाह और उसके रसूल (स0) के लिए जवानों की तरह घाव पर घाव खाए थे। हां वही बूढ़ी खाल जिसको बनी मख़ज़ूम के अत्याचारी कोड़ों की शांय–शांय ने उधेड़ डाला था, मगर अल्लाहु अकबर! वह बूढ़ा जर्जर चेहरा जिसकी आंसू और खून टपकाती झुर्रियों ने ईमानी ग़ैरत की प्रतिष्ठा पर प्रश्न चिह्न नहीं लगने दिया था।––हां अम्मार (र0) उसी बाप के बेटे थे और उन्होंने उस सुमय्या (र0) का दूध पिया था जिसने नारीत्व और बुढ़ापे की दोहरी कमज़ोरियों के बीच खड़े होकर इस्लाम में सबसे पहले जान का नज़राना रब के दरबार में पेश करने की पवित्र रस्म निकाली थी।

जिस समय यासिर (र0) के परिवार पर जुल्मो–सितम की क़यामत टूटी पड़ रही थी––जब ह0 यासिर (र0) का बुढ़ापा तपती हुई जन्ज़ीरों में जकड़ डाला गया था, जब उनकी वृद्ध जीवन संगिनी ह0 सुमय्या (र0) ने ठोकरों, कचोकों, शोलों और बेड़ियों के बीच से गुज़रती हुई जान वाले पर जान देने की

रीत डालने के लिए इस्लाम की पहली शहादत का शुभारम्भ करने जा रही थीं––जब इन बूढ़े माता–पिता का नवयुवक बेटा अम्मार (र0) जुल्म के आख़री शिकन्जों में कसा जा रहा था––उस वक़्त वह पवित्र प्रकृति का अनुरागी, लहू के फ़व्वारों और आंसुओं की मूसलाधार बरसात में यकायक खुशी की अधिकता से मुस्कुरा उठे––सिर्फ़ इसलिए कि ह0 मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) इन असहायों के पास से यह कहते हुए गुज़र गए थे।

"सब्र करो ऐ यासिर के परिवार जनों! वादा है कि तुमसे मुलाक़ात जन्नत में होगी.....।" सुमय्या की आत्मा विस्मृत हो चुकी थी––तीव्र यात्ना से जब जीभ ऐंठ गई थी, वह ज़ालिमों से कह रही थीं कि––"ख़ुदा एक है––ख़ुदा की क़सम!" बूढ़े माँ–बाप ने इस्लाम पर जान न्यौछावर कर दी और युवक अम्मार (र0) इसलिए ज़िन्दा रहे ताकि हिजरत और जिहाद के हौसले निकालने के बाद शहीद हों। सोचिए तो सही ।

कितना पाकीज़ा और निर्मल था वह खून जो अम्मार बिन यासिर (र0) की रगों में गतिमान था।

निष्ठुरता ने जब सच्चाई के नाम लेवाओं के ख़िलाफ़ आग और खून के तूफ़ान उठा रखे थे तो अम्मार (र0) ने उन्हीं आंधियों में अपने ईमान का दीपक जलाया था। यह आंधियां और यह बगोले इस दीपक को बुझा न सके। उन्होंने नई–नवेली जवानी के सीने पर खुदा के लिए घाव पर घाव खाए। बेहद निर्दयी और खूंख़ार इन्सानों की भीड़ में ह0 अम्मार (र0) वही बात कहे चले जा रहे थे जिसे सुनना खुदा के बाग़ियों ने कभी पसन्द नहीं किया और इसके जवाब में हमेशा पत्थर ही बरसे।

"कोई पूज्य नहीं–– पूज्य तो केवल अल्लाह है"। अन्ततः ज़ुल्म बढ़ते–बढ़ते क़यामत में बदल गया। मुसीबतों और आफ़तों के बवन्डरों ने होश–हवास की बाज़ी ही उलट कर रख दी। उन्हें खौलते हुए पानी में ग़ोते दिये गये और––आह! कष्ट और बेचैनी का वह आख़री मोड़ आ पहुंचा जब सहनशीलता अपनी पूरी ऊर्जा ख़त्म करके सूखी लकड़ी की तरह सूख जाती है। यही थी वह परिस्थिति जहां यक़ीनन मजबूर करके ह0 अम्मार (र0) के मुँह से कुछ ऐसे शब्द कहलाए गए जिनके ऊपर तो कुफ़्र था मगर अन्दर ईमान ही ईमान।

इन लफ़्ज़ों के साथ वह क़यामत तो अचानक रुक गई जो जिस्म पर टूट रही थी लेकिन अब अम्मार की आत्मा के भीतर से एक घोर मातम का क़यामत का शोर उठा। यह ख़ौफ़ अपनी तीव्रता में मौत के कष्ट से भी आगे निकल गया था कि क्या यह ज़बरदस्ती कहलाए गए विवशता के शब्द उनके ईमानी जीवन का गला तो नहीं घोंट गए?––क्या मानवीय यात्ना से निकलने के लिए खुदाई अज़ाब के अग्निकुंड में गिरकर पाश–पाश हो जाने वाले तो नहीं?

वह रो दिए––रोते रह गए––हिचकियों और सिस्कारियों में हिचकोले खाते हुए वह जब खुद दर्द से बिखर रहे थे तो अचानक उन्हें हुज़ूर (स0) का ख़्याल आया––वह बेताब होकर उठे और गिरते–पड़ते उस हस्ती की तरफ़ दौड़े जो आदमी को नरक के अलाव से मुक्ति दिलाने के लिए आई थी। वह दौड़ते जा रहे थे और उनका बेक़रार दिल उनसे भी आगे इस कौतुहल में सीने से बाहर निकला जा रहा था कि खुदा जाने रिसालत के दरबार में उनकी ज़िन्दगी के इस अति संवेदनशील मुक़दमें का क्या फ़ैसला आता है।

आँहज़रत (स0) को अपनी नज़रों के सामने––अपने इतने क़रीब पाकर एकदम उनका कलेजा मुँह को आने लगा, दोनों तरफ़ ख़ामोशी छायी थी। एक तरफ़ स्नेह, चिन्ता और अचरज में डूबी ख़ामोशी!––दूसरी तरफ़ वह खून के आंसुओं से भरी ख़ामोशी जो एक ऐसे सीने के अन्दर से उबलती है जिसमें दिल टुकड़े–टुकड़े हो गया हो। यह अम्मार (र0) की ख़ामोशी थी––पछतावा और शर्मिन्दगी से पसीना–पसीना––दर्द और बेचैनी से लहू–लहू––ख़ौफ़ और शंका से अश्क–अश्क।––वह इस तरह रो दिए जैसे उनकी सारी दुनिया लुट चुकी हो जिससे अब उनके पास आंसुओं के सिवा कुछ भी बाक़ी न रह गया हो। उन्हें खुदा के क़हर का भय रुला रहा था मगर उन्हें क्या ख़बर थी ठीक उसी दम रहमत के हज़ारों फ़रिश्ते इन आंसुओं को अपने पलकों से चुन लेने के लिए अपने पर फैला रहे हैं। कितना भाग्यवान है वह रोने वाला जिसके आंसुओं पर खुदा की रहमत को प्यार आ जाए।

"दिल का हाल क्या है?....." अम्मार (र0) के ग़म की कहानी सुनकर दुखियारों के बेहतरीन दोस्त और दुःख हरने वाले (स0) ने पूछा––"तुम अपने दिल को कैसा पा रहे हो?"

"मेरा दिल?"––अम्मार (र0) ने सिसकते हुऐ सीने को कांपते हुए हाथों से थामकर उमड़ते हुए जज़्बे और जुनून के आलम में कहा––"मेरा दिल.....दिल.....ईमान पर पूरा सन्तुष्ट है..... ।" और अगले ही क्षण अम्मार (र0) रहमतुल्ल–लिल–आलमीन की पनाह में थे––बेताबी से हुज़ूर (स0) ने उनको अपनी पवित्र बाहों में ले लिया था––और अपने दामन से उनके आंसू पोंछ डाले थे। वह आंसू यक़ीनन खुदा की प्रिय बूँदें होंगी जिन्हें मुहम्मद (स0) के दामन ने सुखाया अपने अन्दर समाहित कर लिया।

"कोई बात नहीं!.....कोई बात नहीं!!".....हुजूर (स0) आंसू पोंछ रहे थे और टूटे हुए दिल के मोमिन को तसल्ली पर तसल्ली दे रहे थे जिसे इस वक़्त मुहम्मद रसूलुल्लाह (स0) के सिवा दुनिया का कोई इन्सान सांत्वना नहीं दे सकता था।

यह पछतावे के आंसू––खुदा के यह महबूब क़तरे उन्होंने जवानी में पेश किए थे। इसके बाद उनके अर्न्तमन पर इलाही रहमत की घटाएं झूम–झूम कर इस तरह बरसीं कि उनका ईमान हमेशा युवा और ताज़ादम रहा––वह उस समय भी जवान रहा जब अम्मार (र0) बिल्कुल बूढ़े हो चुके थे।

यमामा के जिहादी मुक़ाबले में उनके ईमान की जवानी की यह शान देखने के क़ाबिल थी। पाखण्ड और धर्म भ्रष्ट नापाक शक्तियों के भयावह रेले में जब इस्लाम के मुजाहिदों के क़दम उखड़ने लगे तो अम्मार (र0) के ईमान की तेज़ गर्मी चिंगारियां उड़ाती हुई उठीं और सैकड़ों सीनों को अचानक ज्वालामुखी बना छोड़ा। ह0 अब्दुल्ला बिन उमर (र0) ने यह दृश्य अपनी आंखों से देखा था कि अम्मार (र0) जिनका एक कान कटकर बस लटकता रह गया था, खड़े पुकार रहे हैं:

"मैं अम्मार बिन यासिर हूँ। क्या तुम लोग जन्नत से भाग रहे हो।–– मैं अम्मार बिन यासिर हूँ––क्या तुम खुदा की जन्नत से भागते हो.....?"

ह0 अब्दुल्ला बिन उमर (र0) का कहना है कि यह मन्ज़र एक अद्भुत मन्ज़र था––मैं कभी उनका मस्ताना नारा सुनता था और कभी उनका खून में भीगा कान देखता था जो बस ज़रा सी खाल से हिलग रहा था––और जिसकी कोई परवाह उस

सरफ़रोश मुजाहिद को उस वक़्त नहीं थी जबकि इस्लाम की आबरू ख़तरे में थी।

94 साल की आयु थी जब अम्मार (र0) ने खुदा की बारगाह में खुदा की दूसरी महबूब बूंदें––जीवनदायी खून की अन्तिम बूँदे भी पेश कर दीं। यह बात तो उनको हिजरत के बाद ही हुजूर (स0) की ज़बान से पता चल चुकी थी के उनके नाम–ए–आमाल (कर्मपत्री) में उनकी शहादत का महान अध्याय भी है––लेकिन इस सम्मान तक पहुंचने में कैसे कड़ी परीक्षा, मानसिक और आत्मिक परीक्षा की घाटी से होकर गुज़रना पड़ेगा, इसका कोई इल्म उन्हें नहीं था। यह बात उन्हें तब मालूम हुई जब ह0 अली (र0) की ख़िलाफ़त के युग में "जन्गे जमल" का मैदान गर्म हुआ–– जहां एक तरफ़ मोमिनों की माता ह0 आयशा (र0) जैसी महान हस्ती थीं तो दूसरी ओर अमीरूल मोमिनीन ह0 अली (र0) जैसे साबिकुल अव्वलून (इस्लाम में पहले करने वाले) और दोनों तरफ़ मुसलमान!

ह0 अम्मार (र0) जो ह0 अली (र0) के समर्थन में थे, उस वक़्त दिल हिला देने वाली मानसिक कशमकश के भंवर में फंसकर रह गए। वह क्या करें आख़िर? क्या ह0 अली (र0) का साथ छोड़कर मानो इस दृष्टिकोण का साथ छोड़ दें जो उनके विचार में न्यायसंगत था?––या इस सत्य के बचाव में उस हस्ती के ख़िलाफ़ तलवार उठाएं जो रसूलुल्लाह (स0) की प्रिय पत्नी और पूरी इस्लामी उम्मत की उपकारी मां थीं–– कितने ही ऐसे लोग थे जिनके दिल और दिमाग़ को यह जानलेवा कशमकश पीसे डाल रही थी, और कितने ही लोग थे जो कोई बचने का रास्ता न पाकर एकान्तवास में जा छिपे थे––"तो क्या मैं भी अमल के मैदान से हट जाऊँ? और किसी कोने में जाकर मुँह छिपा लूं? हालांकि मेरी राय में अली (र0) की हिमायत इस वक़्त हक़ की हिमायत है और मोमिनों की

माता (र0) का दृष्टिकोण एक इजतिहादी (संशोधनात्मक) ग़लती है?" ह0 अम्मार (र0) ने सोचा और निर्णय लिया कि वह कदापि सत्य के पक्ष से नहीं हटेंगे––चाहे यह भावनात्मक आस्था का दोधारी संघर्ष उनके दिल व रूह को टुकड़े–टुकड़े कर डाले जो उम्मुल मोमिनीन (र0) के लिए उनके आस्तिक सीने से उबल रहा है। व्यक्तिवाद और सत्यवाद की जंग में ह0 अम्मार (र0) ने जो बलिदान प्रस्तुत किया, भला इससे बड़ा बलिदान और क्या हो सकता है?

वह अगरचे इस जंग में शहीद नहीं हुए बल्कि, "जंगे सफ़्फ़ैन" में शहादत का जाम पिया जिसके एक तरफ़ ह0 अली (र0) थे और दूसरी ओर ह0 मआविया (र0) लेकिन सच यह है, कि जमल की जंग में उनकी आत्मा शहीद हो चुकी थी और सफ़्फ़ैन की जंग में शरीर ने शहादत पाई। जंगे जमल में सत्य के लिए अपनी भावनाओं का खून कर लेने के बाद वह जंगे सफ़्फ़ैन में घाव पर घाव खा रहे थे कि उनको तेज़ प्यास लगी, पानी मांगा तो किसी ने दूध पेश कर दिया––दूध की सूरत देखते ही उन्हें अतीत की एक हसीन याद आई और खुशी के जोश में आंखें तर हो गईं––यह दूध––यह दूध ही शहादत का माध्यम था––शहादत जिसकी तलाश में उनकी एक उम्र बीत गई थी और उनके शौक़ के पाँव में छाले पड़ गए थे।

"रसूलुल्लाह (स0) ने फ़रमाया था"––ईमानी वलवले और शहादत के जज़्बे से झूमते हुए ह0 अम्मार को आवाज़ आई–– "जो आख़री घूंट तुम पियोगे वह दूध होगा.....।"

खुदा से मुलाक़ात की कल्पना ने उनके दिल में भय और आशा की ईमानी हलचल पैदा कर दी। उन्हें महसूस हुआ कि तलवारों की धार उनकी गर्दन को चुम्बकीय कशिश से खींच

रही है––अल्लाह की रहमत और बन्दा नवाज़ियां उनकी तरफ़ बाहें फैला रही हैं––और उनके हर–हर रोंगटे से जीवित खून की हर–हर बूँद से उनके फ़र्ज़ की अन्तिम पुकार बुलन्द हो रही है।

"कर्म पत्री के अन्तिम पन्ने पर जो कुछ लिखना हो अपने खून से लिख दें।–– ऐ जीवन भर खुदा को याद रखने वाले! जल्दी कर!––कि स्वयं खुदा तुझे अपने ख़ास दरबार में याद फ़रमा रहा है..... ।"

अम्मार प्रेमपूर्वक उठे और जिहाद व कठिन रास्ते के अग्नि–स्थल में बेताबी से अपने "बालो पर" जलाने लगे–– आख़िर एक सबसे हसीन ज़ख़्म लगा––एक ज़ख़्म जो शहादत का मनोरम सन्देश लाता है––एक घाव जिसके बाद इन्सान के खून की पहली बूँद टपकते ही जन्नत साक्षात् आ खड़ी होती है––एक घाव जिसके रक्त की हर बूँद पर खुदा को बेहद प्यार आता है। वही अम्मार (र0) जो कभी ईमान की नेमत खो जाने के डर से हुज़ूर (स0) के चरणों में फूट कर रो दिये थे, आज स्वयं अपने लहू में नहाए हुए अल्लाह के क़दमों में इस तरह पड़े थे कि अब उनके लिए न कोई ख़ौफ़ था और न कोई ग़म!––आंसुओं का उपहार भेंट करने वाले ने आज अल्लाह को अपने जीवनदायी रक्त का आख़री तोहफ़ा पेश कर दिया था––हाय कितना भाग्यशाली था वह खुदा का बन्दा जिसने खुदा को उसकी दोनों अतिप्रिय बूँदें पेश की थीं और फिर हक़ीक़त में खुदा को प्रिय हो गया था।––खुदा को कितना प्यारा हुआ था यह शख़्स, इस महान वास्तविकता का कुछ आभास ह0 मआविया (र0) के एक सिपहसालार और एक महामना सहाबी ह0 उमरो बिन आस (र0) के शब्दों से कीजिए।––यह शब्द उनके होंठों से उस वक़्त जुदा हुए जब

अनजाने गिरोह के दो आदमी आपस में झगड़ते हुए उनके पास आए और उनमें से हर एक ने यह आश्वस्त करने की कोशिश की कि ह0 अम्मार (र0) को उसने ही शहीद किया है––उन लोगों को यह धोखा था कि ह0 उमरो बिन आस (र0) जो उस समय ह0 मआविया (र0) की ओर से ह0 अली (र0) की सेनाओं से जंग कर रहे थे, इस सूचना पर बहुत खुश होंगे कि ह0 अली (र0) के इतने बड़े हिमायती को ख़त्म कर डाला गया है––लेकिन यह देखकर उनके दिल व दिमाग़ पर बिजली सी गिर गई कि इस ख़बर को सुनते ही ह0 उमरो बिन आस (र0) का चेहरा शदीद नफ़रत से तमतमा उठा और फिर ख़ौफ़ व ग़म से पीला पड़ गया। बेहद दुःखी मन से आधी मदहोशी के आलम में वह बड़बड़ा रहे थे।

"क़सम अल्लाह की––यह दोनों .....दोज़ख़ के लिए झगड़ रहे हैं––– क़सम अल्लाह की!! मेरा जी चाहता है कि.....मैं..... अब से बीस साल पहले मर गया होता!"

कितने क़ीमती थे और कैसे नूरानी शब्द थे यह!––जो एक तरफ़ अम्मार (र0) की श्रेष्ठता पर प्रकाश डालते हैं तो दूसरी तरफ़ इस महान ऐतिहासिक गुत्थी के हल की तरफ़ इशारा भी करते हैं कि रसूलुल्लाह (स0) ने अम्मार (र0) को शहीद करने वाले जिस "बाग़ी गिरोह" का ज़िक्र फ़रमाया था, क्या वह ह0 मआविया (र0) का गिरोह था यह वह रहस्यमयी अज्ञात दल था जिससे अम्मार (र0) के क़त्ल को अपना कारनामा बताने के लिए यह दोनों लड़ने–झगड़ने वाले खून पी जाने का सम्बन्ध रखते थे। ज़ाहिर है ह0 मआविया (र0) के गिरोह के जज़्बात का प्रतिनिधित्व तो ह0 उमरो बिन आस (र0) के इन शब्दों से हो जाता है और इस अज्ञात विद्रोही दल की खूनी मानसिकता दर्शाने वाले यह दोनों अजनबी व्यक्ति थे।

खुदा से हमें भी ज़रूर मुलाक़ात करनी है।

खुदा जाने कब?––खुदा जाने कहां?

कितनी बड़ी होगी वह भेंट जब एक तुच्छ बन्दा अपने महान पूज्य से मिलेगा––जब सृष्टि यह देखेगी कि उसका महामहिम सृष्टा उसके सामने है। खुदा की क़सम ऐ लोगों!––कैसे अच्छे थे वह लोग जो उस "दर्शन स्थली" की ओर इस शान से गए कि इस मुलाक़ात के अवसर पर खुदा को समर्पित करने के लिए कोई उपहार उनके कफ़न में मौजूद था।––हाय अफ़सोस, उन कफ़नों की झोलियां जिनमें बदन की भी लाश हो और ईमान व अमल की भी।––काश हमें भी उस मुलाक़ात––निश्चित मुलाक़ात का कोई ख़याल आता––आता और तड़पा देता।––काश कभी हम भी तो उसी भय का एहसास कर सकते जिसके आभास ने उस दिन ह0 अम्मार (र0) की जान ही निकाल दी थी जिस दिन उनकी जीभ की बस नोक को ज़बरदस्ती कहलाए गए कुछ शब्दों की आँच छू गई थी––यद्यपि उनका दिल ईमान पर पूरी तरह सन्तुष्ट था।––और हमारे दिल! हाय हमारे दिल!!––शायद यहां तो जीभ और हृदय दोनों से ही इस हौलनाक ख़तरे की अग्नि लपट उठ रही है कि––"क्या .....हम.....मुसलमान.....हैं?."

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

22

मंझधार से साहिल तक

मक्के में कुरैश के एक सत्यवादी व अमानतदार शख़्स ने एलान किया है कि "मानव के सच्चे कल्याण के लिये मैं खुदा का अन्तिम सन्देश लेकर आया हूँ।" तेज़ी से घूमी हुई यह रोमांचक ख़बर ग़फ़्फ़ार क़बीले के एक सत्य की तलाश में गुम इन्सान

ह0 अबूज़र ग़िफारी (र0) के कानों तक भी पहुंची––यह सूचना पाते ही वह स्तब्ध रह गए।

चारों ओर फैले हुए घटाटोप अन्ध्यारे में जैसे कोई अति सुन्दर जुगनू चमक उठा था। यह देखकर उनका मासूम दिल कैसा–कैसा कुढ़ता था कि झूठ, पाप और जुल्म ने मानव बस्तियों में डरावने जंगलों की सी फ़िज़ा पैदा कर दी है। पशुता है कि आदमी की सूरत से टपकी पड़ती है––जैसे आग और खून का एक बड़ा तूफ़ान उमड़ पड़ा है जिसके वहशी थपेड़ों ने तमाम किश्तियों को तोड़–फोड़ डाला है और जो लोग अभी तक इस तूफ़ान में डूबे नहीं थे, वह सब टूटे–फूटे तख़्तों से लिपटे हुए एक–एक करके मंझधार में चकरा रहे हैं और किनारे की हसरत में तड़प रहे हैं––मगर कोई नहीं जानता कि किनारा कहां है और वहां कैसे पहुंचा जा सकता है?

"क्या अजब है कि यह ख़बर सही हो!" ह0 अबूज़र ग़िफ़ारी (र0) ने दिल की गहराईयों में मन्थन किया––"मुमकिन है कि जो बन्दे खुद अपनी जानों पर अत्याचार और अनाचार के पहाड़ तोड़े डालते हैं, उन बदनसीबों पर उनके सच्चे खुदा ने तरस खाया हो.....।"

"वास्तविक खुदा" की कल्पना से ही उनके बेचैन सीने से एक ज़बरदस्त हूक सी उठी––"खुदा"––जिसको भूलकर, जिससे दूर भटक कर आदमी नरक के सिवा कहीं और नहीं पहुंच सकता। "खुदा" जिसके बिना सोने–चांदी के कोश भी दिल के सुकून को डसने के लिए मुँह खोलते हैं––"खुदा" जिसका यक़ीन सीने में छिपाए हुए इन्सान कफ़न ओढ़कर और स्वयं अपने रक्त में स्नान करके भी सहज रूप से मुस्कुरा देता है।

वह न जाने कितनी देर तक क्या सोचते रहे–– और जितना उन्होंने इस ख़बर पर चिन्तन–मनन किया, यह ख़बर उनके लिए उतनी ही आकर्षक और अर्थपूर्ण होती चली गई।

"मेरे भाई!" आख़िर उन्होंने एक व्यवहारिक निर्णय करते हुए अपने भाई से सरगोशी की––"तुम्हें अभी और इसी वक़्त मक्के जाना होगा और उस आदमी के विषय में सब कुछ पता करके बहुत जल्द आना होगा जिसने कहा है कि ख़ुदा के सिवा कोई पूज्य नहीं है।"

और एक भाई की इस पवित्र इच्छा का सम्मान करते हुए दूसरा भाई वास्तविकता की तलाश के इस हसीन सफ़र पर रवाना हो गया। भाई के जाने के बाद उनकी प्रतीक्षा की बेताबी आशा और निराशा की क़यामत से दोचार थी। हर चीज़ की तरफ़ से नज़र उठाकर अब वह सिर्फ़ मक्के की तरफ़ अपने दर्द की दवा के लिए पलकें बिछाए देते थे–– उनका दिल बेताब था कि ज़िन्दगी की सब से बड़ी हक़ीक़त तेज़ी से उनके समीप आए और उनकी एक–एक धड़कन में समा जाए।

आख़िर, आख़िर.....

प्रतीक्षा की जानलेवा घड़ियां बीत गईं––उन्होंने देखा कि उनके भाई मक्के की दिशा से ग़िफ़ार क़बीले में वापस चले आ रहे हैं। दूर ही से उन्होंने आने वाले चेहरे का गहन अध्ययन किया और यात्रा के अनुभवों के बेताबी से जानने की कोशिश की। यह महसूस करके उनकी आंखें ख़ुशी के आंसुओं से भर आईं कि उनके भाई के चेहरे पर एक सौन्दर्यपूर्ण आशा की मनोरम रोशनी दिखाई दे रही है।

क्या पता चला.....? उम्मीद और ख़ौफ़ के दोधारी जज़्बात ने ह0 अबूज़र (र0) के लफ़्ज़ों में थरथरी दौड़ा दी थी।

"घबराइए नहीं!"––उनके भाई ने उनको दिलासा देते हुए कहा–– "मैं उनसे मिलकर और दूसरों से उनके बारे में जानकारी लेने के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूं वह तो खुद भी अच्छे आदमी हैं और दूसरों को भी बड़ी अच्छी बातें सिखाते हैं––और हां वह एक ऐसा अद्भुत कलाम सुनाते हैं जो न शेअर है और न जादूगरी।"

भाई का एक–एक शब्द उन्होंने दिल के कानों से सुना और दिल की प्यास और बहुत कुछ जान लेने के लिए बढ़ गई––वह बेचैन हो गए कि काश मैं खुद मक्के गया होता और अपनी आंखों से उस शख़्स को देखा होता जिसकी चर्चाओं में कानों के लिए इतनी मिठास है–– जिज्ञासा और भावुकता के हिचकोले खाते हुए वह उठ खड़े हुए और बिना किसी तैयारी के झूमते हुए मक्के की ओर चल खड़े हुए। वह संसार में संसार को बनाने वाले को ढूंढने जा रहे थे––उन्हें उस खोए हुए सद्मार्ग की तलाश व्याकुल बनाए हुए थी जिस पर चलकर वह अपने माबूद (पूज्य) से मुलाक़ात कर सकें।

धूल के गुब्बार में अटा हुआ एक जिज्ञासु यात्री धूप और छाँव से बेपरवाह ऊंचे–नीचे रेगिस्तानों की ख़ाक छानता हुआ चला जा रहा था। वह गिरते–पड़ते मक्के में दाख़िल हुए और सीधे मस्जिदे हराम में चले गए––क्या नाज़ुक सफ़र था यह !––वह उस हस्ती को जानते पहचानते तक न थे जिसकी तलाश उन्हें वतन से दूर परदेस में इस तरह खींच लाई थी––और दूसरों से पूछते हुए आशंका थी कि सत्य के दुश्मन उनकी इस आख़री

उम्मीद को तोंड़ न डाले जो ज़िन्दगी के भयावह अन्ध्यारों में उन्हें रोशनी की अकेली किरन लग रही थी।

सूरज चढ़ा––ढलने लगा––शाम हो रही थी और इस परदेसी के पास खाने और ठिकाने की कोई व्यवस्था नहीं थी। अपने अतिथि के स्वागत के लिए स्वयं खुदा ने एक खुलूस से भरे मेज़बान (अतिथेय) को भेजा। यह ह0 अली (र0) थे जिन्होंने इस परदेसी को देखा और उसके बारे में कुछ और पूछताछ करने की औपचारिकता पूरी किये बिना आतिथ्य के बाजू फैला दिए। वह उन्हें अपने घर ले आए और अपनी क्षमता भर मेज़बानी की––लेकिन मेहमान ने उस रात अपने राज़ पर से पर्दा न उठाया। दूसरे दिन वह फिर ख़ान–ए–काबा में जा पहुंचे कि शायद वह उस आदमी को पा सकें जिसकी प्रतीक्षा में उनकी रूह और दिल में जज़्बात ने हलचल डाल रखी थी। दूसरी रात वह फिर ह0 अली (र0) के हिस्से में आए––इसी तरह तीसरा दिन कटा और तीसरी रात आ पहुंची––आज भी वह ह0 अली (र0) के मेहमान थे। आज रात मेज़बान ने यह भी अपना नैतिक कर्तव्य समझा कि अतिथि की यात्रा का उद्देश्य जान कर इस काम में उसका हाथ बटाएं।–– और आज रात ह0 अबूज़र (र0) भी दिल की बात होंठों पर ले आए।

"मैं कल सुबह तुम्हें ह0 मुहम्मद (स0) के पास ले चलूंगा।" ह0 अली (र0) ने खुश होकर तसल्ली दी। "लेकिन अगर राह में कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए जिसकी उपस्थिति में तुम्हारा मेरे साथ देखा जाना अनुचित हो तो मैं जूता ठीक करने या पेशाब करने के बहाने रुक जाऊंगा और तुम चलते रहना।"

इन्तेज़ार की यह पहाड़ सी रात भी कट गई––सुबह की रौशनी में वह ह0 अली (र0) के साथ दरे रसूल (स0) पर हाज़री देने

के लिए चले जा रहे थे। रिसालत के दरबार में दाख़िल हुए तो उनके दिल की धड़कनें तेज़ हो गईं और जैसे ही उनकी पहली नज़र "आख़री नबी (स0)" के ज्योतिर्मय चेहरे पर पड़ी, उन्हें लगा कि दिल की हर एक धड़कन में दिये रोशन हो गए हैं। आस्था का सैलाब था जो ह0 अबू ज़र (र0) के पूरे अस्तित्व से फूट निकला था और अजनबी होने का सारा अहसास, भ्रम और सन्देह के सभी अन्ध्यारे एक ही नज़र में छूमन्तर हो गए थे। वह जांच–परख के जाने क्या–क्या ज़हनी मानचित्र बनाकर लाए थे––मगर यहां तो हक़ीक़त की तलाा का पूरा सफ़र एक ही नज़र में तय हो गया––दो चार बातें हुईं और दिल की तमाम गिरहें एक–एक करके खुलती चली गईं–– ग़िफ़ार क़बीले का जिगर का टुकड़ा बेताबी से उठा और सारी दुनिया से कटकर ईमान और इस्लाम की गोद में आ गिरा।

"अभी तुम्हें अपने ईमान को ज़ाहिर करने की ज़रूरत नहीं।" घर से बेघर नवमुस्लिम को आसानी और सुविधा के धर्म पालन की ख़ास अनुमति देते हुए हुज़ूर (स0) ने तसल्ली दी––" अब अपने क़बीले में वापस जाओ और जब हमारा प्रभुत्व हो जाए तो इधर पलट आना।"

"या रसूलुल्लाह (स0)!" अदब के जोश और ईमान की तीव्रता से कांपती हुई आवाज़ ह0 अबू ज़र (र0) के होंठों से बुलन्द हुई। "उस ज़ात की क़सम जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, में इस कलिमए–हक़ को उन बेईमानों के अन्दर घुसकर चिल्लाकर पढ़ूंगा!"––और सचमुच उन्होंने ऐसा ही किया। वह सत्य की लाज रखने के लिए बेक़रार होकर उठे। जोश के आलम में रवाना हुए। तेज़ी से ख़ान–ए–काबा में दाख़िल हुए और मुश्रिकों (बहुदेववादियों) की भीड़ में घुसकर फेफड़ों की पूरी शक्ति से चीखते हुए एलान किया।

"मैं साक्षी हूं कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं––और मैं गवाही देता हूं कि मुहम्मद (स0) खुदा के रसूल (स0) हैं।"

खुदा के बाग़ियों ने सत्य के उद्घोष की यह गरज सुनी और एक क्षण के लिए हर तरफ़ सन्नाटा छा गया। लोग हैरान थे कि यह कौन शख़्स है जिसने मौत की आंखों में आंखें डालकर यह एलान किया है?––और दूसरे ही लम्हे हक़ के इस एलान के ख़िलाफ़ संघर्ष प्रारम्भ हो गया––निर्दयी जुनून की अवस्था में इन्सानी दरिन्दे उठे और एक इन्सान को हर तरफ़ से लिपट गए––हां दीवानों और नरभक्षियों का पूरी उत्तेजित भीड़ अकेले मोमिन बन्दे पर टूट पड़ी थी। घूंसे थे कि लगातार पड़ रहे थे, ठोकरें थीं कि हर तरफ़ से लग रही थीं, गालियों की तूफ़ानी बौछार थी––अहंकार और बकवास का अभद्र तूफ़ान चल रहा था––और इस घटनाक्रम के जाल में फंसा हुआ मोमिन संयम और दृढ़ संकल्प का प्रकाश पुंज बना हुआ खड़ा था––दुनिया इस बात पर आग बबूला थी कि उसने दुनिया बनाने वाले का नाम क्यों लिया है––मगर मोमिन बन्दा सन्तुष्ट था कि उसने यह इतनी बड़ी बात कही है जिसको सुनने तक की ताब दूसरों में नहीं थी। उसने गालियों के जवाब में उफ़ तक न की––ठोकरें खाईं और कोई फ़रियाद तक न की। वह अपना काम कर चुका था, वह अपनी बात कह चुका था और अब सहने की बारी थी––उसे ख़ौफ़ नहीं पूरा इत्मेनान था कि कायनात का खुदा उसकी सहायता पर है। उसको कोई ग़म न था, दिल से खुशी थी कि वह खुदा की गली में प्रताड़ित किया जा रहा है और उसकी वफ़ादारी के जज़्बे का यह दृश्य उसका खुदा देख रहा है। शारीरिक पीड़ा के अनुभव इस सूक्ष्म भाव में गुम हो चुके हैं कि इस माटी के पुतले की ओर रहमान और रहीम खुदा की विशेष दृष्टि है। सहने वाला सब

कुछ सह रहा था मगर देखने वालों के कलेजे मुँह को आने लगे। मानवीय सज्जनता का दर्द उठा और इस दर्द से तड़पते हुए ह0 अब्बास (र0) जो अभी तक ईमान के स्वाद तक न पहुंचे थे, मानवीय सज्जनता के जोश में आगे बढ़े––और पीड़ित के ऊपर स्वयं को डालते हुए ज़ालिमों को ललकारा :

"दीवानो! तुम्हें कुछ होश भी है? याद रखो कि अगर ग़िफ़ार क़बीले का यह व्यक्ति मारा गया तो तुम्हें शाम की कारोबारी यात्रा में इसके क़बीले से गुज़रना नामुमकिन हो जायेगा।"

आख़रत के अज़ाब (यातना) को नकारने वालों ने ज्यों ही दुनिया के फ़ायदे और नुक़सान के ख़तरे का आभास किया, होश ठिकाने लग गए और इस तरह प्रताणना के बोझ तले सिसकते हुए मोमिन की जान खुदा–खुदा करके बच सकी।

लेकिन दूसरे दिन इससे भी बड़ा घटनाक्रम हुआ––

खुदा की क़सम अभी जिस्म की दर्द भरी चोटों पर एक रात व दिन का वक़्त भी नहीं बीता था कि ईमानी गौरव की चोट खाने वाला फिर उसी यातना–प्रताड़ना की वादी की ओर बढ़ता हुआ नज़र आया––हाए वह रिस्ते हुए घावों पर एक और नया घाव खाने का ईमानी उत्साह––और हाए वह "सत्य का उद्घोष" जो आत्मा लोक की महफ़िल में सभी इन्सानी रूहों ने अपने खुदा के समक्ष किया था। मगर फिर उस शपथ को दोबारा ताज़ा करने के लिए आंसुओं में डूबे आदम (अ0) ज़मीन पर उतरे––नूह (अ0) ने साढ़े नौ सौ बरस तक दिल और जिगर का खून टपकाया और सार्वभौमिक तूफ़ान (महा –जल प्रलय) ने अपनी नौका खुदा के भरोसे चलाई–– इब्राहीम (अ0) ने आग के भड़कते हुये अलाव में खुद को निडर होकर

डाला––यूसुफ़ (अ0) ने जेल काटी––मूसा (अ0) फ़िरऔनी शक्ति से टकराए और बिफरे हुए दरिया का सीना चीरते हुए निकले –– ईसा (अ0) ने फ़ांसी का तख़्ता देखा––और फिर "सैकड़ों" नबियों की पूरी वेदना और पीड़ा का इतिहास अकेले मुहम्मद (स0) ने 23 साल तक दोहराया। कैसे भाग्यशाली मानव थे अबू ज़र ग़िफ़ारी (र0)!––कि इसी "सत्य के उद्घोष" का सौभाग्य दूसरी बार उनके हिस्से में आ रहा था।

इस हक़ के एलान ने जिसको बातिल (असत्य) ने कभी माफ़ नहीं किया, आज तो जैसे भिड़ों के छत्ते को बुरी तरह छेड़ दिया था। अत्याचार व अनाचार की सत्तारूढ़ शक्तियां ज़ख़्मी नाग की तरह उठीं और मोमिन बन्दे पर आक्रमक हो गईं––यक़ीनन आर आज फिर ख़ुदा की कृपा से ह0 अब्बास (र0) दोबारा आड़े न आ जाते तो ह0 अबूज़र (र0) का काम ही तमाम हो चुका होता––आज वह शहीद हो चुके होते––"शहीद"––वह प्रतिष्ठित जन्नत वासी जो जन्नत की ठण्डी हवा खाने के बाद यह अभिलाषा रखता है कि वह फिर इसी दुनिया में वापस किया जाता ताकि एक बार फिर शहीद हो––ज़िन्दा हो और फिर शहीद किया जाए––फिर ज़िन्दा हो, फिर शहीद किया जाए। ज़ख़्मों और चोटों से टुकड़े–टुकड़े वह शरीर उठा जिसको हक़ के नाम पर ख़ाक और ख़ून में मिल जाने की आरजू तड़पा रही थी––वह शहादत की तड़प में खिंचे–खिंचे आए थे और शहादत की आरजू अपने एक–एक घाव में शोला बनाकर लिए हुए वापस जा रहे थे।

अल्लाह! अल्लाह! कैसे लोग थे वह जो हमसे पहले इस्लाम के दायरे में देखे गए। उनके कारनामे उनके साथ गए और हमारे करतूत हमारी जान के लागू है––वह "अहले हक़" थे जिन्होंने हक़ की क़ीमत पहचानी और जी–जान से यह क़ीमत

चुकाने का अन्थक प्रयास किया––और हम "हक़ फ़रोश" (सत्य का सौदा करने वाले) हैं कि नश्वर संसार के चन्द टकों में हमने सदा की राहतों को हंसी–खुशी बेच डाला है––हाए हम!! जो इस दुनिया से लिपटे जाते हें जो हमें अपने सीने से नोच खसोट कर मनों मिट्टी के नीचे गाड़ देने वाली है!––और उस रहीम–करीम खुदा से दूर हैं जिसकी अथाह करूणा जीवन भर के मुजरिमों की आंख में दो आंसू देखती है तो जोश में आ जाती है और ईश समर्पित शरीर के खून का पहला क़तरा टपकते ही जन्नत के दरवाज़े खोल देती है।

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ

23

पुलसिरात (स्वर्ग–प्रवेश–सेतु) क़रीब है।

ह0 अबूज़र ग़िफ़ारी (र0)––

जिनका स्वाभिमानी खून––हक़ की खुद्दारी से लालिमा युक्त और बन्दगी की लाज से सरशार खून रगों में चुपचाप दौड़ने–फिरने के बजाय रग–रग से टपक पड़ने का क़ायल था जिन्होंने अल्लाह के क़दमों में सर रखते ही और ह0 मुहम्मद (स0) के हाथों में हाथ देते ही यह महसूस किया था कि आख़रत इस दुनिया से कहीं अधिक बड़ी और मूल्यवान हक़ीक़त है––उन्हें लगा था कि अब दुनिया की बड़ी से बड़ी अत्याचारी शक्तियों से आंखें चार करके यह हिला डालने वाला एलान कर सकते हैं कि "मुहम्मद (स0) जिस खुदा के रसूल हैं, यह पूरा ब्रहम्माण्ड उसी खुदा का है––उसी खुदा का गुलाम है।"

अबूज़र ग़िफ़ारी (र0)––

जो गोश्त पोस्त का एक ढेर नहीं, मुहम्मद (स0) के फ़ौलादी विश्वास की ज़बरदस्त गूँज थे। वह एक "ईमान" थे जो कड़क रहा था––वह एक बिजली थे जो तड़प रही थी––वह रूह की एक उत्साहवर्धक चीख़ थे––वह दिल का एक बेक़रार जज़्बा थे––वह एक नृत्य करती चिंगारी थी जो बेचैन थी कि घटाटोप अन्धयारों में दीवानों की तरह छलांग लगाए और अन्धेरों का सीना चीरती हुई फिर उसी ख़ाक में मिल जाए जहां से वह पहली बार बुलन्द हुई थी और जहां से उसे एक बार फिर उठना था।

लेकिन यही बेचैन मनोवृत्ति––यही बग़ावत का शोला जो बड़े से बड़े बातिल पर बिजलियां गिरा देता था, जब उस आदमी के रूबरू होता जिसका सुन्दर और महान नाम "मुहम्मद (स0)" था तो फिर उसकी उमड़ती विनम्रता और समर्पण का आलम ही कुछ और होता। हक़ और सदाक़त की कितनी बड़ी आकृति होगा वह मानवीय अस्तित्व जिसकी एक नज़र के इशारे पर अबू ज़र (र0) जैसे निडर और बेजिगर इन्सान की धड़कनें नृत्य करती थीं––विभिन्न सहाबा (र0) ने आँहज़रत (स0) की सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तित्व से अपनी प्रकृति और योग्यता के अनुरूप सद्गुणों और उपकार की दौलत समेटी थी, मगर अबूज़र ग़िफ़ारी (र0) के हिस्से में हुजूर की केवल पवित्रता और दरवेशी ही आयी थी। यह संयम व साधुता उनके अन्दर और बाहर इस तरह छा गये थे कि हुजूर (स0) ने उनके संयम् और दरवेशी को ह0 ईसा इब्ने मरियम (र0) के समकक्ष ठहराया।

इस्लाम क़ुबूल करने से पहले वह एक बड़े डाकू रह चुके थे लेकिन फिर उनके अन्दर ही अन्दर एक महाक्रान्ति ने जन्म लिया। उनके दिल ने गवाही दी कि इस सारी कायनात का ख़ुदा एक ही है। एकेश्वरवाद की यह चिंगारी उनकी राख में

शोला बन गई तो खुदा के बन्दों को लूटने वाला बेचैन हो गया कि वह खुद ही अपने मालिक की राह में कहीं लुट जाए। अब दुनिया की दौलत से अनमने होकर दीन की दौलत ढूंढ रहे थे। अब उन्हें उस खुदा की तलाश बेक़रार किये हुए थी जिसका यक़ीन अब उनके हृदय और आत्मा में जाग उठा था। फिर जब–जब इस हक़ीक़त की प्राणदायी आहट पाकर वह खिंचते हुए आँहज़रत (स0) की सेवा में हाज़िर हुए तो पहली निगाह में ही हुजूर (स0) की मनभावन आंखों में हक़ीक़त की आभा देख ली और सदा–सदा के लिए खुदा और उसके रसूल (स0) के होकर रह गए। खुदा ही जाने , दामने रसूल (स0) में उन्हें कौन सी दौलत नज़र आयी थी कि जिसके बाद सोने और चाँदी को उन्होंने मिट्टी के ढेर में बदला हुआ पाया और फिर अपनी फ़क़ीरी की ज़िन्दगी पर उन्होंने धन और सत्ता का साया तक न पड़ने दिया। उनको हुजूर (स0) से और हुजूर (स0) को उनसे अपनेपन का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध था कि हुजूर (स0) ने अपने बिस्तरे वफ़ात (मृत शय्या) पर भी उनको याद फ़रमाया था और ज़िन्दगी में अपनी महफ़िल में सबसे पहले सम्बोधन का सम्मान भी उन्हीं को प्रदान किया करते थे। अन्तिम समय में जब वह हुजूर (स0) के बिस्तर पर हाज़िर हुए तो ख़ौफ़ और ग़म से कांपते हुए उनके अस्तित्व को आँहज़रत (स0) ने अपने सीने से चिपटा लिया था। हाय वह सीना जिसे मुहम्मद (स0) के पावन सीने से स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

और आह! खुदा के आख़री रसूल (स0) से यह उनका अन्तिम बार लिपट जाना–– रिसालत की गोद की इस गरमी और गरमजोशी ने उनकी परलोक पीड़ा को इस हद तक गरमा दिया था कि फिर वह कभी इस नश्वर संसार को गले लगाने की कल्पना मात्र भी न कर सके–– फिर तो यह दुनिया आख़रत के उस दूर के मुसाफ़िर के लिए एक पेड़ की छाया

से ज़्यादा कुछ न रही जिसके नीचे बहुत दूर जाने वाला मुसाफ़िर थोड़ी देर को सुस्ता तो सकता है, पाँव फैलाकर सो नहीं सकता। सो भी जाए तो ज़रूरत भर––फिर तेज़ तेज़ अपने मार्ग पर चल देता है।
हुजूर (स0) के जीवन काल में बस एक बार उन्होंने किसी जगह की सत्ता की इच्छा जताई थी और उन्हें रिसालत के दरबार से जवाब मिला था।

"ऐ अबूज़र (र0)! तुम निर्बल हो––मैं तुम्हारे लिए वही चीज़ पसन्द करता हूं जो मुझे खुद अपने लिये पसन्द है।"

यह जवाब सुनते ही उन्होंने सदा–सदा के लिए दुनिया की सुनहरी धूल को अभिलाषाओं के दामन से झटक दिया था। वह फ़क़ीरी और पारसाई में डूबते चले गए थे, आख़रत से बहुत क़रीब और जीते जी दुनिया से बहुत दूर होते चले गए थे।

लेकिन यह दूरी जो कभी–कभी सन्यास मालूम होती थी वास्तव में सन्यास नहीं थी––वह दुनिया से फ़रार नहीं हुए थे बल्कि दुनिया में रहते हुए उन्होंने दुनिया को छोड़ दिया था–– इसका सही आभास उस भेंट और गुफ़्तगू से होता है जो उनके संयम् और साधुता के उस युग विशेष में उनके और ह0 अबू मूसा अशअरी (र0) के बीच हुई–– ह0 अशअरी (र0) से उनके निकट सम्बन्ध थे मगर जब वह गवर्नर बनाये जाने के बाद ह0 अबूज़र ग़िफ़ारी (र0) से मिलने आए और वह "भाई–भाई!" कहते हुए उनकी तरफ़ बढ़े तो ह0 अबूज़र (र0) ने उनको दूर हटाते हुए कहा :

"अब तुम गवर्नर हो–– मेरे भाई कहाँ!"

लेकिन दूसरी मुलाक़ात के अवसर पर जब ह0 अबू मूसा अशअरी (र0) फिर उनकी तरफ़ उत्सुक होकर बढ़ना चाहते थे तो ह0 अबूज़र (र0) की बातचीत ने यह स्पष्ट किया कि उनका वास्तविक तात्पर्य क्या था। हक़ीक़त में वह यह कहना चाहते थे कि अगर धन और सत्ता ने तुम्हारी दिल की दौलत को लूट नहीं लिया है तो हम तुम भाई–भाई हैं वरना एक धनवान गवर्नर और एक फ़क़ीर में भाई–भाई का रिश्ता कहां।

"तुमने कोई बड़ी बिल्डिंग तो खड़ी नहीं कर ली?" ह0 अबू ज़र (र0) ने सवाल किया था –

"जी नहीं!"

"खेती तो नहीं करते––मवेशियों के ग़ल्ले तो नहीं रखते?"

"नहीं–नहीं!"

"हां तो अब तुम यक़ीनन मेरे भाई हो।"–– ह0 अबूज़र (र0) ने इस्लामी भाईचारे के सच्चे एहसास के साथ कहा था और खुदा के दो गुलाम गले लग गए थे। एक बार अबी मरवान ने उन्हें देखा कि वह एक चादर बांधे हुए खुदा की परस्तिश कर रहे हैं।

"अबूज़र!"––उन्होंने नमाज़ के बाद उनसे पूछा––"क्या बस एक ही चादर रह गई है?"

"अगर कोई और होती तो तुझे नज़र न आती।" ह0 अबूज़र (र0) ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

"लेकिन"–– अबी मरवान बोले––"इससे पहले तो तुम्हारे पास दो कपड़े थे।"

"ज़रूर थे।"––ह0 अबूज़र (र0) ने कहा––"मगर वह कपड़े मैंने ज़रूरतमन्दों तक पहुंचा दिये।"
"तुम तो खुद उनके हक़दार और ज़रूरतमन्द थे।" अबी मरवान ने कुछ हैरत से कहा।

यह सुनते ही ह0 अबूज़र (र0) के चेहरे पर रूहानी कष्ट के आसार दीखने लगे। अबी मरवान को ग़ौर से देखा और दुःखी मन से कहा।

"खुदा तुम्हें माफ़ करे। तुम चाहते हो कि दुनिया को बढ़ाया जाए––तुम्हें नज़र नहीं आता कि एक चादर मैं बांधे हुए हूं, दूसरी मस्जिद के लिए है। कुछ बकरियां हैं जिनका दूध पीता हूं। कुछ ख़च्चर हैं जो बोझ ढोते हैं। एक नौकर है जो खाना पकाकर खिला देता है––बताओ आख़िर इससे ज़्यादा और क्या चाहिए?"

लेकिन सच यह है कि इन बकरियों का दूध भी वह खुद ही नहीं पी लेते थे। दूध की यह नेमत पाते ही उनके मन में वास्तविक नेमतें देने वाले का विचार आता था। फिर खुदा के उन बन्दों का ख़याल आता जो उनके आस–पास आबाद थे और उनका जो अपने हिस्से का रिज़्क़ (भोजन) पाने को उनके दस्तरख़ान पर अतिथि बनकर आते रहते। पड़ोसियों और हमसायों को पेट भर दूध पिलाने के बाद जो कुछ बच रहता, वह और उनकी पत्नी दोनों पी लेते वरना ऐसा भी होता सारा दूध औरों के हिस्से में चला जाता और उनके लिए सिर्फ़ नेमत के धन्यवाद की मिठास रह जाती। उनके ऊपर पारसाई व

दरवेशी का जो असाधारण प्रभाव था, उसको देखते हुए आशंका थी कि उनकी यह ख़ास प्रवृत्तियां कोई ख़तरनाक रंग न लाएं और रसूल (स0) के उन सहाबियों से टकराव की नौबत न आ जाए जो दीन व दुनिया का बोझ उठाए हुए ज़िन्दगी का पुलसिरात तय कर रहे थे। शायद इसीलिए आँहज़रत (स0) ने उनसे एक बार पूछा था।

"जब तुम्हारे ऊपर ऐसे शासक होंगे जो अपना हिस्सा ज़्यादा लेंगे तो उस वक़्त तुम क्या करोगे?"
"तलवार से काम लूंगा।" ह0 अबूज़र (र0) ने अर्ज़ किया–

"मैं तुमको इससे बेहतर परामर्श देता हूँ।" हुज़ूर (स0) ने इरशाद फ़रमाया था––"ऐसे में तुम सब्र करना यहां तक कि मुझ से आकर मिल जाओ।"

एक बार अबूज़र (र0) मस्जिद में लेटे हुए थे । आँहज़रत (स0) का शुभागमन हुआ। भविष्य की घटनाओं की तरफ़ परोक्ष इशारा करते हुए फ़रमाया–

"अबूज़र (र0) जब तुम इस जगह से निकाले जाओगे तो क्या करोगे?"

"अपने घर चला जाऊंगा" उन्होंने कहा––"या मस्जिदे नबवी में चला जाऊंगा।"

"अगर उससे भी निकाले गए?"

"तो फिर तलवार से काम लूंगा।"

यह जवाब सुनकर हुज़ूर (स0) ने अपना पवित्र हाथ उनके शाने पर रख दिया और तीन बार इरशाद फ़रमाया।–

"अबूज़र (र0)! ख़ुदा तुम्हारे गुनाहों को ढक ले––तलवार मत निकालना––जहां वह ले जाना चाहें चले जाना।"

और इतिहास गवाह है कि ह0 अबूज़र (र0) ने ऐसा ही किया था। उस्मानी (र0) दौर में उन्हें परामर्श दिया गया कि वह "रब्ज़ा" चले जाएं और वह सीधे उठकर वहां से चले गए थे और फिर वहीं एकान्तवास के जीवन को अपना लिया था। वहां कुछ लोगों ने उनसे बार–बार प्रार्थना की कि वह तीसरे ख़लीफ़ा ह0 उस्मान (र0) के ख़िलाफ़ उठें तो हम पूरी तरह साथ देंगे––लेकिन उन्होंने उपद्रव का सर कुचल दिया और नमाज़ तक की इमामत स्वीकार नहीं की––एक हब्शी गुलाम के पीछे नमाज़ पढ़ी और कहा––"मेरे मित्र (स0) का मेरे लिए यही आदेश था।"––कैसा ख़ुशनसीब था वह इन्सान जो इन्सानों और जिन्नों के सरदार मुहम्मद (स0) को अपना "मित्र" कह सकता था।

और कितना सच्चा होगा वह परिपूर्ण मानव (स0) जिसका बढ़ चढ़कर अनुसरण अबूज़र (र0) जैसे असत्य विरोधी और स्पष्ट बोलने वाले इन्सान ने किया।

रब्ज़ा में उनकी यह फ़क़ीरी की ज़िन्दगी उस दौर से जुड़ी है जब एक तरफ़ उम्मत के अन्दर मतभेदों के शोले उठकर फ़ितनों (उपद्रवों) का रंग लेते जा रहे थे तो दूसरी तरफ़ सांसारिक धन–दौलत की एक बाढ़ थी जो उमड़ी चली जा रही थी––वह उन दोनों से बचना चाहते थे। अपनी तन्हाई की बरकत से वह इन दोनों परीक्षाओं से सुरक्षित और अमन में रहे। मगर उनकी

बीवी के लिए उनकी यह महान संयम् और दरवेशी की ज़िन्दगी बड़ी परीक्षा ज़रूर बन गई थी।

इमरान बिन औतान (र0) ने देखा कि अबूज़र (र0) मस्जिद के एक कोने में तन्हाई में सिमटे हुए इस तरह बैठे हैं जैसे कोई बड़े भारी तूफ़ान से खुद को बचाने की कोशिश कर रहा हो।

"अबूज़र!" इब्ने औतान ने पूछा––"यहां अकेले बैठे क्या कर रहे हो?" ह0 अबू ज़र (र0) ने दर्द भरी नज़रें उठाते हुए जवाब दिया––"मैंने अपने आक़ा (स्वामी) से सुना है कि तन्हाई बुरे साथी से बेहतर है।"
अबी अस्मा इसी दौर में उनसे मुलाक़ात करने के लिए रब्ज़ा पहुंचे तो देखा कि उनकी पत्नी कंगाली का शिकार हैं मगर अबूज़र (र0) इसी फ़क़ीरी में मस्त हैं।

"यह औरत कहती है।"––अबूज़र (र0) ने अपनी बीवी की ओर इशारा करते हुए दर्द भरी मुस्कान के साथ कहा––"कि मैं इराक़ चला जाऊं। लेकिन इराक़ जाऊंगा तो वह लोग मेरे सामने दुनिया पेश करेंगे और यह बोझ मुझे पुलसिरात पर औंधे मुंह गिरा सकता है––नहीं–नहीं, मैं इस बोझ से अलग ही रहना चाहता हूँ।"

थोड़ी देर ख़ामोशी रही। फिर अबूज़र (र0) ने एक दर्द भरी बात कही:

"मेरे महबूब ने बताया था कि नरक के पुल के सामने एक पाँव फिसला देने वाला रास्ता है और––तुम लोगो को उस पर से गुज़रना है।"

बैतुल मक़दस में अहनफ़ बिन मईश को एक अजीब आदमी दिखाई दिया जिसका हाल यह था कि वह सजदे से सर उठाता था और फिर सजदे में गिर जाता था। अहनफ़ ख़ास लालसा और जिज्ञासा के साथ उस आदमी के पास गए और बातचीत शुरू करने के लिए पूछा :

"क्या आप बता सकते हैं कि मैंने दो रकअतें अदा कीं या एक रकअत?"

"अगर मुझे नहीं तो खुदा को ख़बर है।" उस शख़्स ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया––इसके बाद सपने के अन्दाज़ में यह कांपते हुए शब्द उसके होंठों तक आए––"मेरे दोस्त अबुल क़ासिम (स0) ने मुझको ख़बर दी है कि ....." इतना ही मुश्किल से कह सकते थे कि सीने से हूक उठी और कोई उन्हें याद आ गया। सहनशीलता का बाँध टूट चुका था और आंखों से आंसू जारी थे। तीसरी बार उन्होंने फिर बात करने की कोशिश की तो दिल की बात ज़बान तक आ सकी।

"मेरे मित्र अबुल क़ासिम (स0) ने मुझको ख़बर दी है कि जो बन्दा अल्लाह को सजदा करता है अल्लाह उसका दर्जा बुलन्द करके उसकी बुराई को मिटाकर नेकी (पुण्य) लिख देता है।"

"आख़िर आप कौन हैं?" निरन्तर सजदों की यह गोपनीयता समझने के बाद अहनफ़ बिन क़ैस ने आस्था के साथ सवाल किया। इसके जवाब में सादगी, विनम्रता और गुज़री यादों में डूबी हुई आवाज़ आई:

"अबूज़र (र0)––रसूलुल्लाह (स0) का सहाबी (सत्संगी)....." तबूक की जंग के अवसर पर जब मोर्चे पर पहुंचने के बाद

हुजूर (स0) को यह बताया जा रहा था कि कौन–कौन इस मुहिम में शामिल होने से रह गया है––तो पीछे रह जाने वालों में "अबू ज़र (र0)––रसूलुल्लाह के सहाबी" का नाम भी लोगों के मुख पर आया––लेकिन किसी को ख़बर न थी कि मार्ग में उनकी सवारी शिथिल पड़ गई थी तो अब वह अपना सामान कमर पर लादे हुए रसूलुल्लाह (स0) के पद चिन्हों पर छाले टपकाते हुये चले आ रहे थे––चले आ रहे थे मस्तों की तरह अपने आप से बेख़बर खुदा और उसके रसूल (स0) की यादों में डूबे साक्षात् भक्ति व अनुसरण।

"वह कोई आ रहा है।" किसी की आवाज़ गूँजी।

"अबूज़र (र0) होंगे"––हुजूर (स0) ने बिना विलम्ब के फ़रमाया।

"खुदा की क़सम अबूज़र (र0) ही हैं।"––दूसरी आवाज़ आई।"

"अबूज़र पर खुदा रहम करे।" हुजूर के पावन शब्द सुने गए।
"वह अकेले चलते हैं––अकेले मरेंगे और––और अकेले उठेंगे।"

और वास्तव में ऐसा ही हुआ––अबूज़र (र0) ने संयम् और दरवेशी की जो अलग सी ज़िन्दगी गुज़ारी थी, उसका अन्तिम सांस उन्होंने एक वीराने की तन्हाई में लिया। रेगिस्तान में अबूज़र (र0) और उनकी अर्द्धांगिनी के सिवा दूर–दूर तक कोई न था।

"अब क्या होगा?"––बेबस और असहाय होने के विचार से उनकी पत्नी रो पड़ी थीं।

"क्यों.....क्यों रोती हो?" शारीरिक दुर्बलता और ईमानी ख़ौफ़ की मिली–जुली आवाज़ में ह0 अबू ज़र (र0) पुकारे थे।

"हमारे पास कफ़न के लिए भी कपड़ा उपलब्ध नहीं और आप. .....आप.....इस वीराने में आख़रत के सफ़र के लिए प्रस्थान करते मालूम होते हैं।" आंसुओं के बीच से उनकी पत्नी ने कहा था।

"चिन्ता मत करो"–– अन्तिम समय में सहाबी (र0) ने सहाबियत की ख़ास ईमानी जोश से होंठों को हरकत दी थी––"हम चन्द आदमी हुज़ूर (स0) के पास बैठे हुए थे कि हुज़ूर (स0) ने फ़रमाया कि तुम में से एक शख़्स रेगिस्तान में जान देगा और उस वक़्त मुसलमानों की एक जमाअत वहां पहुंच जाएगी।–– मैं देख रहा हूं कि वह सब लोग मर चुके हैं और वह रेगिस्तान में मरने वाला व्यक्ति मैं ही हूं, खुदा की क़सम! कहने वाले ने सच कहा और सुनने वाले ने सच सुना, जाओ और देखो कि लोग ज़रूर इधर आ रहे होंगे।"

"हाजियों की टोलियां अपनी–अपनी राह पर जा चुकीं"––पत्नी ने ठण्डी आह भरते हुए कहा था––" रास्ते वीरान पड़े हैं––अब कौन आएगा?"––लेकिन अबूज़र (र0) के दोबारा कहने पर वह टीले पर चढ़ी" तो देखा कि ह0 अब्दुल्लाह इब्ने मसूद (र0) के साथ कुछ लोग इधर चले आ रहे हैं और हज़रत अबूज़र (र0) की वसीयत के अनुसार उनका अन्तिम संस्कार किया गया।। मरते–मरतेवह दुनिया की धूल से दामन झटकते हुए गए और आख़री वसीयत की:

"अगर मेरी बीवी के पास कफ़न भर का कपड़ा निकल आए तो मुझे इसी में कफ़नाया जाए और तुम्हें क़सम है कि मुझे कोई

ऐसा शख़्स कफ़न न पहनाए जिसके पास हुकूमत का मामूली सा भी पद हो।"

"यह थे वह लोग जिनको यह बात याद थी कि खुदा की जन्नत फूलों की सेज नहीं बल्कि एक धारदार पुलसिरात के उस पार है, लेकिन हम हैं वह ज़ालिम, नादान जो पुलसिरात के इधर इसी दुनिया में अपनी जन्नत देखना चाहते हैं––वह ख़ाली हाथ रहना चाहते थे ताकि इस अति भयावह , बेहद हौलनाक पुल को पार कर सकें––लेकिन हम हैं कि दुनिया और इसके बखेड़ों से सर से पाँव तक लदे–फंदे ठीक उसी पुल की तरफ़ आगे बढ़े चले जा रहे हैं जो दोज़ख़ के भड़कते हुए अलाव के ऊपर बाल से ज़्यादा बारीक और तलवार से भी ज़्यादा तेज़ हमारी प्रतीक्षा में है।

––अगर हमारा यही आलम है तो क्या हम इतना भी नहीं सोच सकते कि हमारा अन्जाम क्या होना है?––यह "सोच" ईमान का कम से कम स्तर है, और जहां पर "सोच" तक नहीं है, वहां "ईमान" कहां?–– वहां तो बस बेजान दावे हैं––आत्माहीन शब्द––

सोचिए कि हमारे पास यह "सोच"––कम से कम यह "सोच" है?––सोचिए–– क्या हम मुसलमान हैं.....?

ऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋऋ